नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 8 अंक 4
मई 2006 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

मई दिवस पर मज़दूरों–मेहनतकशों का आह्वान

मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा को कभी न भूलो!

पूँजी की गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के लिए मज़दूर वर्ग का राजनीतिक संघर्ष संगठित करो!

सम्पादक

हर साल की तरह इस बार भी मई दिवस आया है–मज़दूर वर्ग को उसके एतिहासिक कार्यभार की याद दिलाने। यह याद दिलाने कि मज़दूर वर्ग के संगठित संघर्ष का लक्ष्य मालिकों से महज उजरत (मज़दूरी) में बढ़ोत्तरी या अन्य छोटी-मोटी रियायतें हासिल करना ही नहीं है। उसके संघर्ष का अन्तिम लक्ष्य है उजरत व्यवस्था (पूँजीवाद) का ध्वंस करना और उत्पादनतंत्र, राजनीतिक व्यवस्था और समाज के समूचे ढाँचे पर अपना नियंत्रण कायम करना। इस ऐतिहासिक कार्यभार को पूरा करके ही मज़दूर वर्ग खुद को और समूची मानवता को हर प्रकार के शोषण-उत्पीड़न की जंजीरों से मुक्त कर सकता है।

मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा

मज़दूरों-मेहनतकशों को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि मई दिवस का इतिहास मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष का इतिहास है। शिकागो के मज़दूरों ने जब पहली मई 1886 को 'काम के घण्टे आठ करो' का नारा बुलन्द करते हुए अपने ऐतिहासिक संघर्ष की शुरुआत की थी तो यह राजनीतिक संघर्ष था। आठ घण्टे कार्य दिवस की माँग राजनीतिक माँग इसलिए थी क्योंकि यह उस समय समूचे मज़दूर वर्ग की तात्कालिक माँग थी जिसे किसी एक कारखाने के मालिक के सामने नहीं वरन समूचे पूँजीपति वर्ग और उसकी सरकार के सामने प्रस्तुत किया गया था। आगे चलकर यह माँग समूची दुनिया के मज़दूर संघर्षों की प्रमुख तात्कालिक राजनीतिक माँग बन गयी थी।

मई दिवस के अमर शहीदों पार्सन्स, स्पाइस, फिशर और एंजेल की गौरवशाली विरासत को आगे बढ़ाते हुए दुनिया के मज़दूरों ने अनगिन कुर्बानियाँ देकर आखिरकार पूँजीवादी हुकूमतों को मज़बूर किया था कि वे आठ घण्टे कार्यदिवस को कानूनी मान्यता दें।

मज़दूर वर्ग को यह भी कभी नहीं भूलना चाहिए कि मई दिवस के महान शहीदों की याद को कलंकित करने और उसकी क्रान्तिकारी विरासत को धूमिल करने का इतिहास भी काफी पुराना है। दुनिया भर में मज़दूर वर्ग के भीतर छिपे हुए गद्दारों, तरह-तरह की सुधारवादी पार्टियों और नेताओं ने लगातार यह कोशिश की कि मई दिवस के प्रदर्शनों को ओजहीन-पुंसत्वहीन बना दिया जाये। इन पार्टियों और नेताओं ने संघर्ष के इस गौरवशाली दिवस को आराम और मनोरंजन के दिन के रूप में बदल दिया है।

हमारे देश में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.आई) और भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) [सी.पी.आई.(एम)] जैसी नकली कम्युनिस्ट पार्टियों और उनसे जुड़ी आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक) और सेण्टर आफ इण्डियन ट्रेड यूनियन्स (सीटू) जैसी यूनियनों ने यही किया है। ये पार्टियाँ और यूनियनें हर साल मई दिवस पर सलाना नीरस-बेजान कर्मकाण्ड जैसे आयोजन करती हैं–किसी धार्मिक कथा की तरह शिकागो के मज़दूरों के संघर्ष की कथा सुनायी जाती है, झण्डा फहराया जाता है फिर लड्डू आदि बाँटकर इतिश्री कर ली जाती है। इससे भी बुरी बात यह है कि मई दिवस के दिन किसी तात्कालिक आर्थिक माँग पर लेवर दफ्तर पर धरना-प्रदर्शन भी आयोजित कर लिया जाता है। मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा क्या रही है इसे समझने के लिये 1893 में मज़दूर इण्टरनेशन की कांग्रेस में पारित एक प्रस्ताव के इस अंश पर ही गौर कर लेना काफ़ी होगा। इस कांग्रेस में मज़दूर वर्ग के शिक्षक व पथप्रदर्शक फ्रेडरिक एंगेल्स भी मौजूद थे।

"पहली मई के दिन आठ घण्टे के कार्यदिवस के लिए होने वाले प्रदर्शन को साथ ही साथ अनिवार्यतः सामाजिक परिवर्तन के जरिये वर्ग विभेदों को नष्ट करने की मज़दूर वर्ग की दृढ़ निश्चयी आकांक्षा का प्रदर्शन भी होना चाहिए।"

लेकिन मज़दूर वर्ग के गद्दारों ने मज़दूरों के खून से सने लाल झण्डे को कलंकित करते हुए मई दिवस को "वर्ग विभेदों को नष्ट करने की मज़दूर वर्ग की दृढ़निश्चयी आकांक्षा का प्रदर्शन" करने के बजाय मज़दूर वर्ग की असहायता के

(पेज 7 पर जारी)

1 मई

आज घोषणा करने का दिन
हम भी है इंसान
हम लोगों के श्रम के बूते
है दुनिया की शान
हमें चाहिए बेहतर दुनिया
करते हैं ऐलान
सीना तान के उठो साथी
लेकर यह ललकार
घृणित दासता किसी रूप में
नहीं हमें स्वीकार
मुक्ति हमारा अमिट स्वप्न है
मुक्ति हमारा गान।

राजा ने जनसंघर्षों के आगे घुटने टेके

संसद–बहाली नेपाली जनता की विजय लेकिन... राजशाही पर फैसलाकुन चोट अभी बाकी

विशेष संवाददाता

गोरखपुर। नेपाली जनता के बहादुराना संघर्ष के आगे घुटने टेकते हुए आखिरकार राजा ज्ञानेन्द्र को संसद बहाल करने पर मजबूर होना पड़ा। यह नेपाली जनता की विजय है। जनवाद के लिए संघर्ष की राह में मिली एक महत्वपूर्ण सफलता है। लेकिन अभी संघर्ष का लक्ष्य पूरी तरह हासिल नहीं हो सका है। नेपाली जनता की जनवादी आकांक्षाओं की निर्णायक विजय अभी बाकी है।

नेपाल के नवनियुक्त प्रधानमंत्री गिरिजा प्रसाद कोइराला और सात दलों के गठवन्धन में शामिल पार्टियों के अतीत के आचरण और चरित्र को देखते हुए जनता के व्यापक हिस्से में यह आशंका अभी बनी हुई है कि कहीं राजा के साथ साँठगाँठ कर ये ताकतें संविधान में मामूली संशोधन करके संवैधानिक राजतंत्र जैसे फार्मूले को जनता पर थोपने की कोशिश न करें। अगर यह कोशिश हुई तो इस विश्वासघात को नेपाली जनता चुपचाप बर्दाश्त नहीं करेगी।

राजा ज्ञानेन्द्र द्वारा संसद बहाली की घोषणा के अगले दिन 25 अप्रैल को काठमाण्डू में जगह-जगह जो रैलियाँ निकलीं उनमें जहाँ एक ओर जनता जीत का जश्न मना रही थी वहीं नेताओं को चेतावनियाँ भी दी जा रही थीं। गिरिजा प्रसाद कोइराला के आवास के करीब ही आयोजित एक सभा में एक वक्ता ने चेतावनी दी : "नेताओ सावधान! हम संविधान सभा चाहते हैं।" पास में ही एक अन्य सभा में एक वक्ता ने दहाड़कर कहा : "अगर गिरिजा बाबू हमारे साथ खिलवाड़ करने की कोशिश करेंगे तो हम उन्हें फाँसी पर लटका देंगे।" इससे नेपाली अवाम की आकांक्षा स्पष्ट तौर पर जाहिर हो जाती है।

नेपाल में जनतंत्र की बहाली के लिए विगत 6 अप्रैल से शुरू हुए और उन्नीस दिनों तक अविराम चले इस ऐतिहासिक जनान्दोलन में नेपाली समाज के विभिन्न वर्गों ने बढ़-चढ़कर भागीदारी की। केवल शोषित-उत्पीड़ित गरीब मेहनतकश जनता ने ही नहीं वरन छात्रों सहित मध्य वर्ग की भारी आबादी ने राजधानी काठमाण्डू और अन्य शहरों में हज़ारों की तादाद में प्रदर्शनों में भागीदारी की। डॉक्टरों, इंजीनियरों, कलाकारों, पत्रकारों, महिलाओं और अन्य स्वतंत्रपेशा लोगों

(पेज 6 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मार्क्सवाद जड़सूत्र सिद्धान्त नहीं

आज की विडम्बना यह है कि सैद्धान्तिक-वैचारिक मज़दूर वर्गीय-मार्क्सवादी- क्रान्तिकारी प्रतिबद्धता का दिवाला पिटता जा रहा है। पूँजीबाद की सड़ांध चौतरफा 'लाल झण्डे' को 'गन्दलाती' जा रही है। वर्ग संघर्षों की संगठित शक्ति पूँजीवाद के हित साधन के लिए इस्तेमाल हो रही है। मैं जल संस्थान में पहले सीटू फिर एटक यूनियन से सम्बद्ध रहा, लेकिन अनुभव बताते हैं कि वे मज़दूर वर्ग को मार्क्सवाद की दीक्षा देने में असमर्थ रहे हैं, उन्हें तो पका-पकाया कम्युनिस्ट चाहिए। सिर्फ़ लाल झण्डा थामने से संघर्ष की प्रतिबद्धता नहीं आती, उन्हें मार्क्सवाद की शिक्षा देनी पड़ेगी–व्यावहारिक मार्क्सवाद की।

मार्क्सवाद भाकपा, माकपा या माले का हो, इनमें फर्क राजनैतिक अधिक है, सैद्धान्तिक नहीं। बाकी सारे मतभेद पूँजीवाद के खिलाफ़ संघर्ष के साथ ही समाप्त व कम होंगे। या वह मिट जायेगा जो गद्दार होगा या गलती नहीं सुधारेगा। या मार्क्स-लेनिन-माओ के नाम के जड़सूत्री सिद्धान्तों की केवल तोता रटन्त करेगा–बाबा जयगुरुदेव की तरह भविष्यवाणी तो करेगा कि "सतयुग आयेगा"। यानी मज़दूर वर्ग क्रान्ति तो करेगा–लेकिन सतयुग की भविष्यवाणी के अलावा क्रान्ति के नाम पर बाबा जयगुरु देव की तरह चेलों को टाट पहनाते हुए खुद मजे लेता रहेगा।

ऐसे 'सो काल्ड' कम्युनिस्ट या उनकी विचारधारा भी वैसे ही खत्म होगी जैसे समय आने पर जयगुरुदेव जैसे महन्थ व मठाधीश खत्म होंगे।

–जगदीश पुरी, देहरादून

सहर बाक़ी है

इस सुनसान काफ़ी अँधेरी रात में
मेरे यार तेरा हाथ है मेरे हाथ में

अँधेरा और अभी और निखर जाने दो
इस रात की तक़दीर सँवर जाने दो

तीरगी जब भी कभी बढ़ती जाती है
रौशनी और भी कुछ उभरी आती है

कब टूटेगा कोई तारा ये बता तो देगा
दूर कितनी है अभी मंजिल बता तो देगा

बड़ी दूर है अभी मंजिल तो क्या ग़म है
अपने साथ जो ये ग़म है, तो क्या कम है

उठ रहा है कहीं धुआँ-सा देख यार भी
मुन्तज़िर है एक लश्कर उस पार भी

जाने कितने चढ़ानों का सफ़र बाक़ी है
तन्हा सितारा रौशन है, सहर बाक़ी है

–सिद्धान्त 'सहर', गोरखपुर

मज़दूरों ने ललकारा

धा गे न ती न क धिन तबला बोले
सा रे ग म प इकतारा
मज़दूरों के हक को
पूँजीपतियों ने है मारा
ये हैं बड़ा निर्दयी
जालिम बड़ा निर्दयी।
मज़दूरों ने महल बनाए
चौड़ी-चौड़ी सड़क बनाए
दूर-दूर तक रेल बिछाए
फिर भी दर-दर ठोकर खाए
ये फसल उगाते, खेत सींचते
ढोते मिट्टी गारा
मज़दूरों के हक को
पूँजीपतियों ने है मारा
ये हैं बड़ा निर्दयी
जालिम बड़ा निर्दयी।
कैसा अपना लोकतंत्र है
कैसी है लाचारी
दुर्बल हैं मेहनतकश जनता
मोटे हैं व्यापारी
कोर्ट-कचहरी, पुलिस-प्रशासन
में फैला अँधियारा
मज़दूरों के हक को
पूँजीपतियों ने है मारा
ये हैं बड़ा निर्दयी
जालिम बड़ा निर्दयी।
श्रमिकों जागो, दलितों जागो
जागो नौजवानों
इस काल चक्र के विकट समय में
अपनी गति पहचानों
गाँव-शहर में, सारे जग में
सबने है ललकारा
मज़दूरों के हक को
पूँजीपतियों ने है मारा
ये हैं बड़ा निर्दयी
जालिम बड़ा निर्दयी।

–सुरेश चन्द, गोरखपुर

भूल सुधार

'बिगुल' के मार्च-अप्रैल, 2006 (संयुक्तांक वर्ष-8 अंक 2-3) में मुद्रण सम्बन्धी कई गलतियाँ गयी हैं जिनमें से कुछ प्रमुख गलतियाँ निम्नवत हैं :

1. *उपरोक्त अंक में अन्तिम पृष्ठ पर प्रकाशित होने वाला मुद्रण सम्बन्धी विवरण (प्रिन्ट लाइन) छपाई की तकनीकी गड़बड़ी के कारण मुद्रित नहीं हुआ है। यह एक बड़ी गलती है। वर्तमान अंक में अन्तिम पृष्ठ पर सबसे अन्त में प्रकाशित मुद्रण सम्बन्धी विवरण ही पिछले (मार्च-अप्रैल 2006) अंक की भी प्रिन्ट लाइन है।*
2. *मुख्य पृष्ठ पर मार्च-अप्रैल 2006 की जगह अप्रैल-मार्च प्रकाशित हो गया है।*
3. *पृष्ठ 6 पर बाक्सो में प्रकाशित दोनों सामग्री–"आर्थिक सर्वेक्षण ने 'रोजगार विहीन विकास' पर चिन्ता जताई ..." व "गरीबी रेखा या भुखमरी रेखा" के शीर्षक गलती से आपस में बदल गयें हैं, पाठक इन्हें सुधार कर पढ़ें।*

उपरोक्त मुख्य गलतियों के अलावा प्रूफ सम्बन्धी भी कई गलतियाँ हैं। इन गलतियों के लिए हम पाठकों से क्षमाप्रार्थी हैं। भविष्य में ऐसी त्रुटियों से बचने की हम पूरी कोशिश करेंगे।

सधन्यवाद,

- सम्पादक

आपकी मेहनत सफ़ल हो

'बिगुल' को दो अंक (दिसम्बर'05 व जनवरी-फरवरी'06 संयुक्तांक) मिले। बहुत पसन्द आया अखबार हमारे लोगों को। आप लोगों की मेहनत सफल हो, यही कामना करता हूँ। प्रयास करूँगा झारखण्ड पर कभी विशेष रिपोर्ट भेजने की।

कालेश्वर, हजारीबाग

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

राहुल फाउण्डेशन के कुछ महत्वपूर्ण नये प्रकाशन

1. साहित्य और कला	–मार्क्स-एंगेल्स	150.00
2. फ्रांस में वर्ग-संघर्ष	–कार्ल मार्क्स	40.00
3. फ्रांस में गृहयुद्ध	–कार्ल मार्क्स	20.00
4. लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर	–कार्ल मार्क्स	35.00
5. उजरती श्रम और पूँजी	–कार्ल मार्क्स	10.00
6. मजदूरी, दाम और मुनाफ़ा	–कार्ल मार्क्स	15.00
7. गोथा कार्यक्रम की आलोचना	–कार्ल मार्क्स	10.00
8. लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त	–फ्रेडरिक एंगेल्स	30.00
9. जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति	–फ्रेडरिक एंगेल्स	30.00
10. पार्टी कार्य के बारे में	–लेनिन	15.00
11. एक क़दम आगे दो क़दम पीछे	–लेनिन	60.00
12. जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो रणकौशल	–लेनिन	25.00
13. जुझारू भौतिकवाद	–प्लेख़ानोव	35.00
14. लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने	–लीदिया फ़ातियेवा	50.00
15. मार्क्सवाद क्या है	–एमिल बर्न्स	20.00
16. फाँसी के तख्ते से	–जूलियस फ़्यूचिक	30.00
17. पाप और विज्ञान	–डायसन कार्टर	60.00
18. सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?	–लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर	25.00

सभी पुस्तकों के लिए सम्पर्क करें : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ, फोन : 2786782

'बिगुल'

सम्पादकीय कार्यालय	:	69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उप कार्यालय	:	जनगण होम्यो सेवासदन मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क	:	289-सी, श्रमिक कुंज, सेक्टर-66, नोएडा

मूल्य - एक प्रति -रु. 3/-
वार्षिक - रु. 40.00 (डाक व्यय सहित)

'बिगुल'

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 4:00 से 7:00 बजे तक)
3. जाफ़रा बाजार, गोरखपुर -273001

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

- कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा- लेनिन 5/-
- मकड़ा और मक्खी- विल्हेल्म लीब्कनेख़्त 3/-
- ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके-सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
- अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
- समाजवाद की समस्याएं, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
- क्यों माओवाद? 10/-
- मई दिवस का इतिहास 5/-
- अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
- पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-
- बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेंजे :
जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ

कार्ल मार्क्स के जन्मदिन (5 मई) के अवसर पर

कार्ल मार्क्स की समाधि पर भाषण

-फ्रेडरिक एंगेल्स

14 मार्च को तीसरे पहर, पौने तीन बजे, संसार के सबसे महान विचारक की चिन्तन-क्रिया बन्द हो गयी। उन्हें मुश्किल से दो मिनट के लिए अकेला छोड़ा गया होगा, लेकिन जब हम लोग लौटकर आये, हमने देखा कि वह आरामकुर्सी पर शान्ति से सो गये हैं–परन्तु सदा के लिए।

इस मनुष्य की मृत्यु से यूरोप और अमरीका के जुझारू सर्वहारा वर्ग की और ऐतिहासिक विज्ञान की अपार क्षति हुई है। इस ओजस्वी आत्मा के महाप्रयाण से जो अभाव पैदा हो गया है, लोग शीघ्र ही उसे अनुभव करेंगे।

जैसे कि जैव प्रकृति में डार्विन ने विकास के नियम का पता लगाया था, वैसे ही मानव इतिहास में मार्क्स ने विकास के नियम का पता लगाया था। उन्होंने इस सीधी-सादी सच्चाई का पता लगाया जो अब तक विचारधारा की अतिवृद्धि से ढंकी हुई थी-कि राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म, आदि में लगने के पूर्व मनुष्य जाति को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और सिर के ऊपर साया चाहिए। इसलिए जीविका के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन और फलत: किसी युग में अथवा किसी जाति द्वारा उपलब्ध आर्थिक विकास की मात्रा ही वह आधार है जिस पर राजकीय संस्थाएँ, कानूनी धारणाएँ, कला और यहाँ तक कि धर्म सम्बन्धी धारणाएँ भी विकसित होती है। इसलिए इस आधार के ही प्रकाश में इन सब की व्याख्या की जा सकती है, न कि इससे उल्टा, जैसा कि अब तक होता रहा है।

परन्तु इतना ही नहीं, मार्क्स ने गति के उस विशेष नियम का पता लगाया जिससे उत्पादन की वर्तमान पूँजीवादी प्रणाली और इस प्रणाली से उत्पन्न पूँजीवादी समाज, दोनों ही नियंत्रित है। अतिरिक्त मूल्य के आविष्कार से एकबारगी उस समस्या पर प्रकाश पड़ा, जिसे हल करने की कोशिश में किया गया अब तक सारा अन्वेषण-चाहे वह पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों ने किया हो या समाजवादी आलोचकों ने, अन्ध अन्वेषण ही था।

ऐसे दो आविष्कार एक जीवन के लिए काफ़ी हैं। वह मनुष्य भाग्यशाली है, जिसे इस तरह का एक भी आविष्कार करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। परन्तु जिस भी क्षेत्र में मार्क्स ने खोज की और उन्होंने बहुत से क्षेत्रों में खोज की और एक में भी सतही छानबीन करके ही नहीं रह गये। उसमें यहाँ तक कि गणित में भी, उन्होंनें स्वतंत्र खोजें की।

ऐसे वैज्ञानिक थे वह। परन्तु वैज्ञानिक का उनका रूप उनके समग्र व्यक्तित्व का अर्द्धांश भी न था। मार्क्स के लिए विज्ञान ऐतिहासिक रूप से एक गतिशील, क्रान्तिकारी शक्ति था। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में किसी नयी खोज, जिसके व्यावहारिक प्रयोग का अनुमान लगाना अभी सर्वथा असम्भव हो, उन्हें कितनी भी प्रसन्नता क्यों न हो, जब उनकी खोज से उद्योग-धन्धों और सामान्यत: ऐतिहासिक विकास में कोई तात्कालिक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते दिखाई देते थे, तब उन्हें बिल्कुल ही दूसरे ढंग की प्रसन्नता का अनुभव होता था। उदाहरण के लिए विजली के क्षेत्र में हुए आविष्कारों के विकास क्रम का और मरसैल दंप्र के हाल के आविष्कारों का मार्क्स बड़े ग़ौर से अध्ययन कर रहे थे।

मार्क्स सर्वोपरि क्रान्तिकारी थे। जीवन में उनका असली उद्देश्य किसी न किसी तरह पूँजीवादी समाज और उससे पैदा होने वाली राजकीय संस्थाओं के ध्वंस में योगदान करना था, आधुनिक सर्वहारा वर्ग को आज़ाद करने में योग देना था, जिसे सबसे पहले उन्होंने ही अपनी स्थिति और आवश्यकताओं के प्रति सचेत किया और बताया कि किन परिस्थितियों में उसका उद्धार हो सकता हैं। संघर्ष करना उनका सहज गुण था। और उन्होंने ऐसे जोश, ऐसी लगन और ऐसी सफलता के साथ संघर्ष किया जिसका मुकाबला नहीं है। प्रथम 'Rheinische Zeitung' (1842) में, पेरिस के Vorwarts!' (1844) में, 'Deutsche brusseler-Zeitung' (1847) में, 'Neue Rheinische Zeitung' (1848-1849) में, 'New-York Daily Tribune' (1852-1861) में उनका काम, इनके अलावा अनेक जोशीली पुस्तिकाओं की रचना, पेरिस, ब्रसेल्स और लन्दन के संगठनों में काम और अन्तत: उनकी चरम उपलब्धि महान अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की स्थापना यह इतनी बड़ी उपलब्धि थी कि इस संगठन का संस्थापक, यदि उसने कुछ भी और न किया होता, उस पर उचित ही गर्व कर सकता था।

इस सब के फलस्वरूप मार्क्स अपने युग के सबसे अधिक विद्वेष तथा लांछना के शिकार बने। निरंकुशतावादी और जनतंत्रवादी, दोनों ही तरह की सरकारों ने उन्हें अपने राज्यों से निकाला। पूँजीपति, चाहे वे रूढ़िवादी हों चाहे घोर जनवादी, मार्क्स को बदनाम करने में एक दूसरे से होड़ करते थे। मार्क्स इस सबको यूँ झटकारकर अलग कर देते थे जैसे वह मकड़ी का जाला हो, उसकी ओर ध्यान न देते थे, आवश्यकता से बाध्य होकर ही उत्तर देते थे। और अब वह इस संसार में नहीं हैं।

साइबेरिया की खानों से लेकर कैलिफोर्निया तक, यूरोप और अमरीका के सभी भागों में उनके लाखों क्रान्तिकारी मज़दूर साथी जो उन्हें प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, आज उनके निधन पर आँसू बहा रहे हैं। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि चाहे उनके विरोधी बहुत से रहे हों, परन्तु उनका कोई व्यक्तिगत शत्रु शायद ही रहा हो। उनका नाम युगों-युगों तक अमर रहेगा, वैसे ही उनका काम भी अमर रहेगा!

[एंगेल्स द्वारा हाइगेट कब्रिस्तान, लन्दन में 17 मार्च 1883 को अंग्रेजी में दिया गया भाषण।
जर्मन में 22 मार्च 1883 को 'Der Sozialdemokrat' समाचार पत्र, अंक 13 में प्रकाशित।]

मेहनतकश वर्ग के चेतना की दुनिया में प्रवेश का जश्न

लेनिन

"मेहनतकश साथियो!

मई दिवस आ रहा है। वह दिन, जब तमाम देशों के मेहनतकश वर्ग चेतना की दुनिया में प्रवेश करने का जश्न मनाते हैं, इन्सान के हाथों इन्सान के शोषण और दमन के खिलाफ अपनी संघर्षशील एकजुटता का इजहार करते हैं, करोड़ों मेहनतकशों को भूख, गरीबी और जिल्लत की ज़िन्दगी से आज़ाद कराने की प्रतिज्ञा करते हैं इस महान संघर्ष में दो दुनियाएँ रूबरू खड़ी हैं–सरमाये की दुनिया और मेहनत की दुनिया, शोषण तथा गुलामी की दुनिया।

एक तरफ खड़े हैं खून चूसने वाले मुट्ठी भर अमीरो-उमरा, उन्होंने फैक्ट्रियाँ और मिलें, औजार और मशीनें हथिया रखी हैं, उन्होंने करोड़ों एकड़ जमीन और दौलत के पहाड़ों को अपनी निजी जायदाद बना लिया है, उन्होंने सरकार और फ़ौज को अपना खिदमतगार बना लिया है, लूट-खसोट से इकट्ठा की हुई अपनी दौलत की रखवाली करने वाला वफादार कुत्ता। दूसरी तरफ खड़े हैं उनकी लूट के शिकार करोड़ों गरीब। वे मेहनत-मज़दूरी के लिए भी उन धन्ना सेठों के सामने हाथ फैलाने पर मजबूर हैं। इनकी मेहनत के बल से ही सारी दौलत पैदा होती है। लेकिन रोटी के एक टुकड़े के लिए उन्हें तमाम उम्र एड़ियाँ रगड़नी पड़ती हैं। काम पाने के लिए भी गिड़गिड़ाना पड़ता है, कमरतोड़ श्रम में अपने खून की आखिरी बूँद तक झोंक देने के बाद भी ज़िन्दगी भूखे पेट गुजारनी पड़ती है। गाँव की अँधेरी कोठरियों और शहरों की सड़ती, गन्दी बस्तियों में।

लेकिन अब उन गरीब मेहनतकशों ने दौलतमंदों और शोषकों के खिलाफ़ जंग का ऐलान कर दिया है। तमाम देशों के मज़दूर श्रम को पैसे की गुलामी, गरीबी और अभाव से मुक्त कराने के लिए लड़ रहे हैं जिसमें साझी मेहनत से पैदा हुई दौलत से मुट्ठी भर अमीरों को नहीं बल्कि सब मेहनत करने वालों को फायदा होगा। वे जमीन, फैक्ट्रियों, मिलों और मशीनों को तमाम मेहनतकशों की साझी मिल्कियत बनाना चाहते हैं। वे अमीर-गरीब के अन्तर को खत्म करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि मेहनत का फल मेहनतकश को ही मिले, इन्सानी दिमाग की हर उपज, काम करने के तरीकों में आया हर सुधार मेहनत करने वालों के जीवन स्तर में सुधार लाये, उसके दमन का साधन न बने।

पूँजी के खिलाफ़ श्रम के भीषण संघर्ष में सब देशों के मज़दूरों को अनेक कुर्बानियाँ देनी पड़ी हैं। बेहतर जीवन और वास्तविक आजादी के अधिकार के लिए लड़ते हुए उनके ख़ून के दरिया बहे हैं। जो मज़दूरों के हित में लड़ते हैं उन्हें हुकूमतों के बर्बर अत्याचार झेलने पड़ते हैं, लेकिन इतने जुल्मो सितम के बावजूद दुनिया भर के मज़दूरों की एकता बढ़ रही है और वे लगातार, कदम-ब-कदम सरमायेदार शोषक वर्ग पर सम्पूर्ण विजय की ओर बढ़ रहे हैं।"

(रूसी क्रान्ति के महान नेता लेनिन ने 1904 में मई दिवस के अवसर पर यह पर्चा लिखा था)

मज़दूर वर्ग के संघर्ष के राजनीतिक और आर्थिक रूपों के अन्तर को समझना होगा

आम मज़दूर साथियों के लिए यह बेहद जरूरी है कि वे राजनीतिक संघर्ष और आर्थिक संघर्ष के बीच के अन्तर को भलीभाँति समझ लें। तभी उन्हें मई दिवस के ऐतिहासिक महत्व का वास्तव में भान हो सकेगा। किसी कारखाना या उद्योग विशेष में काम करते हुए मज़दूर अपनी पगार, पेंशन, भत्ते आदि को लेकर आर्थिक संघर्ष करते हैं और इस प्रक्रिया में उन्हें अपनी संगठित शक्ति का अहसास होता है तथा वे लड़ना सीखते हैं। लेकिन अलग-अलग उद्योगों या कारखानों के मज़दूर अपने-अपने मालिकों के खिलाफ़ अलग-अलग आर्थिक लड़ाइयाँ लड़ते हैं। उनकी यह लड़ाई एक समूचे वर्ग के रूप में, समूचे पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ नहीं होती। लेकिन साथ ही, वे कुछ ऐसी रोजमर्रे की लड़ाइयाँ भी लड़ना शुरू करते हैं जो समूचे मज़दूर वर्ग की साझा माँगों को लेकर होती हैं–जैसे आवास, स्वास्थ्य आदि सुविधाओं की माँग, पक्की नौकरी की गारण्टी या ठेका प्रथा की समाप्ति की माँग (सभी मज़दूरों के लिए) न्यूनतम मज़दूरी तय करने की माँग या काम के घण्टे निर्धारित करने की माँग आदि। ये रोजमर्रे की लड़ाइयाँ आगे बढ़ती हैं तो सभी पेशों के मज़दूरों को इन आम माँगों पर एकजुट कर देती हैं और अपने-अपने पेशों से बंधी हुई उनकी संकुचित मनोवृत्ति को तोड़ देती हैं। ये राजनीतिक संघर्ष पूरे पूँजीपति वर्ग और उनकी राज्यसत्ता के खिलाफ़ समूचे मज़दूर वर्ग को एकजुट कर देते हैं और जनता के अन्य वर्गों के साथ भी उनके मोर्चाबन्द होने का आधार तैयार कर देते हैं। मज़दूर वर्ग के ये राजनीतिक संघर्ष पूँजीपति वर्ग की राज्यसत्ता को मजबूर करते हैं कि वह कानून बनाकर उनके काम के घण्टे निर्धारित करें, उनकी सेवाशर्ते तय करे, उनकी नौकरी की सुरक्षा की कमोबेश गारण्टी दे तथा मालिकों के ऊपर कानूनी बन्दिशें लगाकर उन्हें मज़दूरों को विभिन्न बुनियादी सुविधाएँ देने के लिए बाध्य करें ताकि संगठित मज़दूरों की शक्ति पूँजीवादी व्यवस्था के ही सामने अस्तित्व का संकट न खड़ा न कर दे। लेकिन किसी भी पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग द्वारा लड़कर हासिल किये जाने वाले राजनीतिक अधिकारों की एक सीमा होती है, जो धीरे-धीरे मज़दूर वर्ग के सामने साफ़ होती जाती है। पूँजीवादी जनवाद का असली चेहरा जब पूँजीपति वर्ग के अधिनायकत्व के रूप में सामने आ जाता है, तब मज़दूर वर्ग इस सच्चाई को समझ लेने की स्थिति में आ जाता है कि असली सवाल पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को ही बदल डालने का है और यह काम पूँजीवादी राज्यसत्ता को चकनाचूर किये बिना अंजाम नहीं दिया जा सकता। राजनीतिक संघर्ष करते हुए ही मज़दूर वर्ग एक संगठित वर्ग के रूप में एकजुट होकर पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध लड़ना सीखता है, उसे पूँजीवादी व्यवस्था के असली रूप और उसकी

(पेज 4 पर जारी)

निजीकरण की पटरी पर लालू की रेल

(कार्यालय संवाददाता)

रेल महकमे ने निजीकरण की दिशा में एक और कदम बढ़ा दिया है। रेल मंत्रालय को ओबेराय होटल समूह की ओर से राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, चित्तौड़, आगरा होते हुए दिल्ली तक लक्जरी ट्रेन चलाने का प्रस्ताव मिला है। इस ट्रेन में आठ कोच और चौबीस केबिन होंगे। भारतीय रेलवे कैटरिंग और पर्यटन निगम इस प्रस्ताव से बेहद खुश हैं। उसके कार्यकारी निदेशक पी.के.गोयल तो इस परियोजना को निजी-सार्वजनिक साझेदारी के क्षेत्र में मील का पत्थर मान रहे हैं।

इससे पूर्व, जनवरी में रेल मंत्रालय ने माल ढुलाई का दरवाजा निजी क्षेत्र के लिए खोलने की घोषणा की थी। जिसके तहत निजी कम्पनियों के लिए कंटेनर ट्रेन चलाने का रास्ता खुल गया था। वैसे भी चोर दरवाजे से रेल महकमा निजीकरण की ओर कदम बढ़ाता रहा है। प्रायोगिक तौर पर कुछ स्टेशनों/प्लेटफार्मों की देख-रेख, सफाई, कैटरिंग, कोच व इंजन के काम आदि ढेरों काम देशी व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हवाले करने का काम विगत एक दशक से चल रहा है। ताजा रेल बजट के माध्यम से रेल ट्रेवल सर्विस ऐजेण्टों की बढ़ोत्तरी और प्रीपेड यू.टी.एस. काउण्टर आदि को और बढ़ाने की घोषणा इसी दिशा में बढ़ा एक और कदम था।

दूसरी तरफ, रेलवे मंत्रालय के सूत्रों के अनुसार समूह 'ए' से लेकर समूह 'डी' तक के कुल एक लाख 85 हजार पद खाली हैं जिनमें समूह 'सी' के एक लाख 39 हजार पद शामिल हैं। ये तो वे पद हैं जिन्हें मंत्रालय रिक्त मानता है। हकीकत में तो ये काफ़ी ज्यादा हैं। विगत डेढ़ दशक से इस विभाग से लाखों की संख्या में लोग कार्य मुक्त हुए हैं, लेकिन इनमें से ज्यादातर पदों पर भर्ती नहीं हुई। किसी वक्त 21 लाख कर्मचारियों वाले इस महकमे में बमुश्किल 10 लाख रेलकर्मी बचे हैं। वैसे भी, उदारीकरण के इस दौर में जब चौतरफा निजीकरण, विनिवेशीकरण, भर्ती पर रोक, छंटनी का ही दौर चल रहा है, तो फिर देश का इतना बड़ा महकमा, जिसका अलग से बजट घोषित होता है, भला कैसे इस प्रक्रिया से बचा रहे। देशी और बहुराष्ट्रीय लुटेरों की ललचाई निगाहें इसपर लगी हुई हैं। चूँकि यह काफ़ी बड़ा विभाग है, लिहाजा इसका एकमुश्त निजीकरण-विनिवेशीकरण सम्भव नहीं है। इसलिए किस्तों में प्रक्रिया चल रही है–निजीकरण की भी और छंटनी की भी।

रामाविजन फैक्ट्री की बन्दी की आशंका से मज़दूरों में आक्रोश

(बिगुल संवाददाता)

किच्छा (ऊधमसिंह नगर)। पिक्चर ट्यूब निर्माता रामाविजन लि. के प्रबन्धन द्वारा कारखाने की जमीन और मशीन आदि के गुपचुप सौदे की भनक लगते ही यहाँ के मज़दूरों में तीव्र आक्रोश व्याप्त हो गया। आनन-फानन में मज़दूरों ने बैठक करके अपनी एकजुटता कायम की और इस षड्यंत्र के खिलाफ़ संघर्ष की रणनीति तैयार की।

पिछले लम्बे समय से प्रबन्धन की संदिग्ध भूमिका से इस कारखाने में बन्दी की तलवार लटक रही है। वैसे भी इस कारखाने में ब्लैक एण्ड व्हाइट पिक्चर ट्यूब का उत्पादन होता रहा है, जिसका बाजार सिकुड़ता हुआ समाप्ति की ओर है। और चूँकि फैक्ट्री का मालिक सरकारी सब्सिडी और टैक्स की रियायतें-सहूलियतें खपचा चुका है, लिहाजा वह इसके नवीनीकरण अथवा विस्तारीकरण के बारे में सोचने से रहा। भारी मुनाफा कमाने के बाद वर्तमान में फैक्ट्री के जमीन की ही कीमत करोड़ों रुपये में है और कबाड़ी के भाव मशीनों-मोटरों को बेचने के बाद भी वह भारी फायदे में रहेगा। इसके साथ ही वह मजदूरों की भी फोकट में छुट्टी कर देने के फिराक में है। वैसे भी यह कारखाना उस कुख्यात जैन ग्रुप का है जो सारे श्रम कानूनों को अपने पॉकेट में रखता है, कभी भी अपने संस्थानों में यूनियन तक नहीं बनने देता और मजदूरों को ब्वायलर तक में झोंकवा चुका है। वह सब्सिडियाँ खाकर और मजदूरों को दुह-निचोड़कर पलायन करने का कुशल खिलाड़ी है। वह रामपुर जिले में स्थित अपने शिवा पेपर मिल को बन्द करके लगभग दो हजार मजदूरों की देनदारियाँ तक हड़प गया और मजदूर आज भी मारे-मारे फिर रहे हैं।

रामाविजन कारखाने में भी अपनी प्रकृति के अनुरूप वह श्रम कानूनों का खुला उल्लंघन करते हुए मज़दूरों का दमन करता रहा है। यहाँ के मज़दूर इन्हीं दमनकारी नीतियों के खिलाफ़ अतीत में दो बार (1993 व 1998) जुझारू संघर्ष कर चुके हैं, लेकिन उन्हें हार का सामना करना पड़ा था। 1998 के आन्दोलन के बाद यहाँ के प्रबन्धन ने बड़े ही शातिराना तरीके से मज़दूरों की छँटनी की प्रक्रिया शुरू की और किसी समय 350 नियमित मज़दूरों वाले इस कारखाने में बमुश्किल 70 नियमित मज़दूर बचे हैं। यही नहीं वह कभी महीने में 208 घण्टे ड्युटी का फार्मूला चला कर मज़दूरों का उत्पीड़न करता रहा तो कभी मनमानी छुट्टी-मनमाने काम का ढर्रा चलाता रहा। स्थिति यह है कि डेढ़ दशक से काम करने वाले यहाँ के मज़दूर आज भी ढाई से तीन हजार रुपये मासिक वेतन पर बमुश्किल गुजारा करने के लिए अभिशप्त हैं।

यूँ तो यहाँ के मज़दूर कारखाने की बन्दी की आशंका से पहले से ही ग्रसित रहे हैं और अपने ग्रेच्यूटी आदि को प्रबन्धन द्वारा दबा लेने के प्रति शंकालू रहे हैं। पिछले दो वर्षों से प्रबन्धन का रंग-ढंग ऐसा ही रहा है। लेकिन पिछले दिनों जब अचानक कारखाने की जमीनों की पैमाइश होने लगी और मशीनों, मोटरों आदि की गिनती व फोटोग्राफी होने लगी तो इनकी चिन्ता और बढ़ गयी। इस बीच इन्हें दूसरे स्रोतों से पता चला कि मालिक ने जमीन का अलग और मशीनों-मोटरों का किसी कबाड़ी से अलग सौदा कर दिया है तो उनका आक्रोश बढ़ना स्वाभाविक है।

आज के कठिन हालात, वक्ती तौर पर मज़दूर आन्दोलनों की पराजय तो दूसरी तरफ़ बुलन्द इरादों के बावजूद इनकी छोटी-सी संख्या ऊपर से शासन-प्रशासन से लेकर श्रम विभाग और न्यायपालिका तक के मज़दूर विरोधी हमलावर तेवर से यहाँ के मज़दूरों के सामने कठिन चुनौतियाँ आ उपस्थित हुई हैं। ऐसे में यहाँ के मज़दूरों को क्या कुछ मिल पाता है यह भविष्य के गर्भ में है।

मज़दूर वर्ग के संघर्ष के राजनीतिक और आर्थिक रूपों के अन्तर को समझना होगा

(पेज 3 से आगे)

सीमाओं का अहसास होता है और वह उन सीमाओं को तोड़ने के लिए आगे कदम बढ़ाता है। राजनीतिक संघर्ष करते हुए ही मज़दूर वर्ग अपने ऐतिहासिक मिशन से परिचित होता है, सर्वहारा क्रान्ति की अपरिहार्यता और अवश्यंभाविता से परिचित होता है, उस क्रान्ति के विज्ञान को आत्मसात करता है और समाजवादी व्यवस्था के अग्रदूत की भूमिका निभाने के लिए अपने को तैयार करता है।

आर्थिक संघर्ष मज़दूर वर्ग का बुनियादी संघर्ष है। इसके जरिए वह लड़ना और संगठित होना सीखता है। मुख्यतः ट्रेड यूनियनें इस संघर्ष के उपकरण की भूमिका निभाती हैं और इस रूप में वर्ग संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला की भूमिका निभाती हैं। लेकिन आर्थिक संघर्ष मज़दूर वर्ग को सिर्फ कुछ राहत, कुछ रियायतें और कुछ बेहतर जीवनस्थितियाँ ही दे सकते हैं। वे पेशागत संकुचित मनोवृत्ति को तोड़कर मज़दूरों को उनकी व्यापक वर्गीय एकजुटता की ताकत का अहसास नहीं करा सकते। न ही वे उन्हें अपनी मुक्ति की सम्भाव्यता और पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता का अहसास करा सकते हैं। ऐसा केवल राजनीतिक माँगों पर संघर्ष के द्वारा ही सम्भव है।

मज़दूर आन्दोलनों का इतिहास और मज़दूर क्रान्ति का विज्ञान हमें बताता है कि आर्थिक संघर्ष कभी भी अपने आप, स्वयंस्फूर्त ढंग से राजनीतिक संघर्ष में रूपान्तरित नहीं हो जाते। आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ शुरू से ही मज़दूर वर्ग राजनीतिक संघर्षों को भी चलाये, तभी मज़दूर वर्ग पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध अपने संघर्ष को आगे बढ़ा सकता है। राजनीतिक संघर्ष जब तक रोजमर्रे के संघर्षों के अंग के तौर पर प्रारम्भिक अवस्था में होते हैं तभी तक ट्रेड यूनियनों के माध्यम से उनका संचालन संभव होता है। एक मंजिल आती है जब राजनीतिक संघर्ष के लिए सर्वहारा वर्ग के किसी ऐसे संगठन की उपस्थिति अनिवार्य हो जाती है जो सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की सुसंगत समझदारी से लैस हो। यह संगठन पूँजीवाद के आर्थिक ताने-बाने, राजनीतिक तंत्र और पूरी सामाजिक संरचना को भली भाँति समझने के बाद उसके विकल्प का खाका पेश करता है; पूँजीवादी राज्यसत्ता को ध्वस्त करके सर्वहारा राज्यसत्ता की स्थापना करने तथा समाजवाद का निर्माण करने के कार्यक्रम और रास्ते से सर्वहारा वर्ग को शिक्षित करता है और उस रास्ते पर आगे बढ़ने में सर्वहारा वर्ग को नेतृत्व देता है। विश्व मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में सर्वहारा वर्ग के हिरावल के रूप में ऐसी सर्वहारा पार्टी की धारणा के मूर्त रूप लेते ही ट्रेड यूनियन ऐतिहासिक रूप से "पिछड़े" वर्ग-संगठन की स्थिति में पहुँच गयी। वर्ग-संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला वह आज भी है, लेकिन वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा के मार्गदर्शन में संगठित पार्टी ही पूँजीवादी व्यवस्था का नाश करके सर्वहारा वर्ग की आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक मुक्ति के संघर्ष को अंजाम तक पहुँचा सकती है, यही सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षा है और बीसवीं सदी के दौरान इतिहास इसे सत्यापित भी कर चुका है।

मज़दूर क्रान्ति की विचारधारा मज़दूर आन्दोलन में अपने आप नहीं पैदा हो जाती। उसे उसमें बाहर से डालना पड़ता है। यह काम मज़दूर वर्ग के हिरावल दस्ते के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी के संगठनकर्ता-कार्यकर्ता अंजाम देते हैं। वे मज़दूरों की रोजमर्रे की लड़ाइयाँ संगठित करते हुए, पहली ही मंजिल से उनके बीच लगातार राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा का काम चलाते हैं, आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ राजनीतिक संघर्ष भी संगठित करते हैं, उन्हें क्रमशः उन्नत और व्यापक बनाते हैं, इस प्रक्रिया के दौरान मज़दूरों के सर्वाधिक उन्नत तत्वों को विचारधारा से लैस करके हरावल दस्ते (पार्टी) में भरती करते हैं तथा उनके माध्यम से ट्रेड यूनियनों व अन्य जनसंगठनों मोर्चों में पार्टी के विचारधारात्मक मार्गदर्शन एवं राजनीति का वर्चस्व (हेजेमनी) स्थापित करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं।

अर्थवादी मज़दूर वर्ग को तरह-तरह से आर्थिक संघर्षों तक ही सीमित रखने की कोशिश करते हैं, वे मज़दूर वर्ग को राजनीतिक संघर्षों से दूर रखने की या फिर इनके मामले में संयम बरतने की सीख देते हैं। वे यह भी दलील देते हैं कि मज़दूर वर्ग की विचारधारा मज़दूर आन्दोलन के भीतर से स्वयंस्फूर्त ढंग से पैदा हो जाती है। इस तरह वे मज़दूर वर्ग के बीच उसके हिरावल दस्तों (पार्टी तत्वों) द्वारा सचेतन तौर पर संगठित की जाने वाली राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन की कारवाई को अनुपयोगी बताने की कोशिश करते हैं। वे ट्रेड यूनियनवादी भी इन्हीं के सगे-सहोदर होते हैं (प्रायः ये दोनों एक ही होते हैं) जो अपनी सारी कवायद ट्रेड यूनियन की चौहद्दी तक ही सीमित रहते हैं और इसके बाहर मज़दूर चेतना के विकास को हर चन्द कोशिश करके रोकते हैं, क्योंकि तब उनका सारा धन्धा ही चौपट हो जाने का खतरा रहता है। जो संसदीय वामपंथी क्रान्ति के बजाय बुर्जुआ संसद और चुनावों के ही जरिए समाजवाद ला देने का धोखा भरा प्रचार करते हैं, उनकी राजनीति अर्थवाद और ट्रेड यूनियनवाद से ही नाभिनालबद्ध होती है। अपने मूल रूप से ये सभी सुधारवाद की ही विविध अभिव्यक्तियाँ हैं जो मज़दूर वर्ग को यह धोखा भरी नसीहत देती हैं कि क्रान्ति के बजाय इसी व्यवस्था में सुधारों का पैवन्द लगाकर काम चलाया जा सकता है। संसदीय वामपंथ और अर्थवाद की राजनीति चूँकि मार्क्सवाद के सारतत्व (वर्ग संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व) में "संशोधन" (यानी वास्तव में तोड़-मरोड़) करने की कोशिश करती हैं, अतः उसे संशोधनवाद भी कहा जाता है। संशोधनवाद, अर्थवाद, ट्रेड यूनियनवाद जैसी धाराएँ मज़दूर वर्ग को सर्वहारा क्रान्ति के मूल विचार से भटकाकर, पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करती हैं। इतिहास बताता है कि मज़दूर आन्दोलन के इन विभीषणों, जयचन्दों, मीरजाफरों ने पूँजीवाद की इतनी सेवा की है और इतने नाजुक मौकों पर उसकी मदद की है कि उसे याद करके पूँजीपति वर्ग की आँखें भर आयें। यहाँ तक कि जिस समाजवाद का विश्व-पूँजीवाद के बाहरी हमले कुछ न बिगाड़ सके, उसे भी ध्वस्त करने में इन भितरघातियों की ही भूमिका केन्द्रीय रही।

(मई, 2003 के सम्पादकीय से)

मेरठ अग्निकाण्ड : क्या यह महज एक हादसा है?

मेरठ। एक और अग्निकाण्ड। एक और हादसा। पूँजी की मानवद्रोही व्यवस्था का एक और नरसंहार। जलते-झुलसते, भयाक्रान्त भागते-दौड़ते, गिरते-पड़ते, गिरे हुए को रौंदते-कुचलते, चीखते-चिल्लाते हज़ारों का हुजूम और राहत कार्य से ज्यादा मरे-अधमरे लोगों को हटाने-गायब करने में मशगूल संवेदनहीन प्रशासन। यही तो खौफनाक मंजर था मेरठ के उस व्यापार मेले का, जहाँ विगत 10 अप्रैल को अग्निकाण्ड हुआ था।

घटना के बाद जहाँ एक तरफ सैंकड़ों लोग ज़िन्दगी और मौत से जूझ रहे थे, तमाम लोग अपने परिजनों को ढूँढ रहे थे, वहीं प्रशासन ज़िन्दा-मुर्दा लाशों को गायब करने की संवेदनहीन कोशिशों में लगा था; हर बार की भाँति इस बार भी मृतकों व घायलों की संख्या कम करने में लगा था। उधर राजनीतिक गिद्ध–सोनिया गाँधी से लेकर मायावती-राजनाथ तक और मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव से लेकर गृह राज्य मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल तक–मेरठ में मंडराने लगे।

एक दूसरे से जुड़े तीन बड़े पण्डालों में लगे जिस मेले में हज़ारों की संख्या में लोग मौजूद हों और जहाँ से निकलने का केवल एक रास्ता हो, जहाँ लकड़ी के बने फर्श और प्लास्टिक, जूट, कपड़े आदि से बने छत हो और जो दमकल पहुँचने तक जलकर लगभग खाक हो गया हो वहाँ सरकार द्वारा 30 मृतक और 141 घायल की घोषणा, उसकी संवेदनहीनता और झूठ का सबसे बड़ा प्रमाण है। वह भी उस समय जबकि जिला प्रशासन खुद 54 मृतकों की पुष्टि कर रहा हो। प्रत्यक्षदर्शियों व मानवीय सहायता में जुटे लोगों द्वारा सैंकड़ों के मरने की आशंका, प्रशासन की लाख कोशिशों के बावजूद झूठ में नहीं बदल सकती।

किसी भी घटना-दुर्घटना के बाद मरों-अधमरों को गायब करने में तो वैसे भी हमारे देश का पुलिस व प्रशासन कुशल खिलाड़ी हो चुका है। लेकिन मेरठ अग्निकाण्ड के बाद जिला प्रशासन ने जिस अमानवीयता के साथ घटना स्थल पर बुलडोजर चलाया और आग में स्वाहा हुए मासूम बच्चों-महिलाओं समेत तमाम लोगों की जली हुई अस्थियों को नेस्तनाबूद कर दिया, वह इस मानवद्रोही व्यवस्था की एक बानगी है। मृतकों और घायलों के लिए मुआवजे की घोषणा इस घृणित अपराध को ढंक नहीं सकती।

क्या यह महज एक दुर्घटना है या फिर मुनाफ़े की अंधी हवस का परिणाम? यह एक व्यापार मेला था, मुनाफ़ा बटोरने का एक जलसा था, वह भी पूर्णतः वातानुकूलित (एयरकंडीशंड)। जहाँ तड़क-भड़क में तो कोई कमी नहीं थी, लेकिन सुरक्षा का कोई भी इंतजाम नहीं। गर्मी के दिन थे लेकिन न तो अग्निशमन यंत्र, पानी, रेत से भरी बाल्टियाँ थी, न तो अग्निशमन वाहन (दमकल) ही वहाँ उपलब्ध थे। यहीं नहीं, गैस सिलेण्डरों के इस्तेमाल तक की रोक नहीं थी और बेतरतीब तारों का जाल बिछा था। ऊपर से कोढ़ में खाज यह कि तीनों पण्डालों में से निकलने का एक मात्र छोटा-सा रास्ता। यानी घटना होने के पूरे आसार मौजूद थे और प्रशासन इन सबसे अनभिज्ञ बना रहा।

हालत यह कि अग्निशमन विभाग कहता है कि उसे ऐसे किसी आयोजन की जानकारी नहीं थी, जबकि इस प्रदर्शनी का उद्घाटन जिले का प्रमुख (जिलाधिकारी) करता है। उधर मुख्यमंत्री पहले तो अपने प्रशासन को क्लीन चिट दे जाता है और विपक्ष द्वारा सरकार को बदनाम करने की साजिश बताता है। लेकिन बाद में सरकार की किरकिरी होते देख उसने जिले के चार आला अधिकारियों के स्थानान्तरण और ए.डी.एम. के निलम्बन की घोषणा करके और जाँच आयोग बिठाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली। बहरहाल, जाँच और मुआवजों की सरकारी घोषणा हो चुकी है। चुनावी मदारी अपनी रोटियाँ सेंकने में जुटे हैं। कितने घर सूने हो चुके हैं और कितने ज़िन्दगी और मौत से अभी भी जूझ रहे हैं। लोगों का तात्कालिक उबाल भी ठण्डा पड़ता जा रहा है।

अतीत की भाँति ज़िन्दगी धीरे-धीरे सामान्य हो जायेगी और जाँच कार्य ठण्डे बस्ते के हवाले होगा। लेकिन, इस अग्निकाण्ड ने एक बार फिर यह सवाल खड़ा कर दिया है कि आखिर कब तक लोगों की बलि चढ़ती रहेगी और हम खामोश अपनी तबाही का मंजर देखते रहेंगे।

–आकाश दीप

पेपरमिल में विस्फोट और आग से मज़दूरों की मौत कौन है इसका ज़िम्मेदार?

(बिगुल संवाददाता)

ऊधमसिंह नगर। उत्तरांचल राज्य के ऊधमसिंह नगर के काशीपुर में श्री श्याम पेपर मिल के सोडियम क्लोरेट के गोदाम में हुए विस्फोट और उससे धधकी आग की चपेट में आकर दो दर्जन से भी ज्यादा मज़दूरों की अकाल मौत हो गयी और दर्जनों घायल हैं जिनमें कई जीवन और मृत्यु के बीच जी रहे हैं। इस भयानक अग्निकाण्ड के बाद मालिकों ने रातो-रात मज़दूरों की कई लाशों को गायब कर दिया और प्रशासन महज 10 लोगों की मौत स्वीकार रहा है।

यह 1 मई का वही दिन था, जिसे मेहनतकश अवाम अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के रूप में मनाता है। इस दिन की इस घटना ने खतरनाक परिस्थितियों में काम करने वाले मज़दूरों के हालात और मालिकों की अमानवीयता की एक और बानगी प्रस्तुत कर दी। जिन्दा-मुर्दा लाशों को गायब करने और सरकारी मुआवजे की घोषणा से मामले की लीपापोती की कोशिशों में एक और घृणित खेल जारी हो गया है।

हालात ये हैं कि इस भयानक काण्ड, जिसमें विस्फोट के बाद पचास मीटर तक उठती लपटों ने पल्प प्लांट, बिजली के ट्रांसफार्मर और दूर खड़े जेबीसी तक को अपनी गिरफ्त में ले लिया, चारों तरफ खतरनाक गैस के बादल छा गये, वहाँ बचाव कार्य भी देर से शुरू हुआ। दमकल खड़े रहे क्योंकि गैस मास्क दस्ता नहीं था।

स्थिति यह है कि पिछले एक साल के भीतर इस पेपर मिल में विभिन्न घटनाओं में आधा दर्जन से ज्यादा मज़दूरों की असमय मौत हो चुकी है और दुर्घटनाओं में घायलों की तो गिनती ही नहीं है। विगत डेढ़ वर्ष के दौरान स्थानीय एस जी स्टील कारखाने में मिसाइल दगने से मज़दूर की हुई मौत के बाद से ही दर्जनों ऐसी घटनाएँ घटित हो चुकी हैं, जिसमें मज़दूरों की मौते हुई हैं। लेकिन यह घटना इन सबमें सबसे बड़ी घटना है और ज्यादातर मामलों में शवों को ठिकाने लगा दिया जाता है। अब सवाल यह उठता है कि क्या यह महज एक हादसा था? निश्चित रूप से यह मुनाफ़े की अन्धी लूट का परिणाम है। ये वे कारखाने हैं जहाँ न्यूनतम श्रम कानून तो बहुत दूर की बात है, सुरक्षा के न्यूनतम मानकों तक की अनदेखी यहाँ आम बात है। मज़दूरों को ग्लब्स, एप्रेन, हेलमेट, मास्क, जूते आदि तक देने की बात कौन करे यहाँ, अग्नि शमन के भी कोई इन्तेजाम नहीं हैं। जबकि ऐसे प्लाण्टों में फायर बिग्रेड का प्रमाणपत्र ज़रूरी है। चूँकि यहाँ ज्यादातर ठेके के मज़दूर काम करते हैं और उनका कोई रिकार्ड भी नहीं होता, लिहाजा इनका बीमा तक नहीं होता। अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि मिल प्रबन्धन उस दिन काम पर लगे मज़दूरों की सूची तक उपलब्ध नहीं करा सका।

यह एक नंगी सच्चाई है कि मालिकों के लिए मुनाफ़ा और केवल मुनाफ़ा केन्द्र में होता है, जिनके लिए काम करने वाला मज़दूर भी एक उपकरण होता है जिनकी ज़िन्दगी की कीमत इन हत्यारों के लिए कुछ भी नहीं होती। सरकार से लेकर प्रशासन तक का इन्हीं हत्यारों की हिफाजत सर्वोपरि काम होता है। इस घटना ने भी इसी बात को एक बार और प्रमाणित किया है।

सर्वोच्च न्यायालय का मज़दूर जमात पर एक और हमला

(कार्यालय संवाददाता)

लखनऊ। देश के उच्चतम न्यायालय के मज़दूर विरोधी फैसलों की फेहरिस्त लम्बी होती जा रही है। इसी कड़ी में मज़दूरों के रोजगार सुरक्षा पर एक और हमला बोलते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि सरकार को सरकारी नौकरियाँ खत्म करने का भी अधिकार है। उसने देश की निचली अदालतों को यह निर्देश तक जारी कर दिया है कि वे निकाले गये कर्मचारियों की बहाली का आदेश न दें। उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान सर्वोच्च न्यायालय ने श्रम सम्बन्धों और मजदूरों के अधिकारों पर लगातार कुठाराघात करते हुए मजदूर विरोधी ढेरों फैसले दिये हैं। केन्द्र सरकारें, 'हायर एण्ड फायर' (यानी जब चाहो रखो जब चाहो निकाल बाहर करो) की तर्ज पर, द्वितीय श्रम आयोग की खतरनाक रिपोर्ट आने के बावजूद, मालिकों के पक्ष में "लचीला" श्रम कानून अभी तक पारित नहीं कर पायी हैं, न्यायपालिका उसे अपने फैसलों से लागू करवाती जा रही है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि न्यायपालिका भी उसी पूँजीवादी समाज का एक अंग है जैसी कार्यपालिका और व्यवस्थापिका। कल जबकि एक हद तक देश का मज़दूर आंदोलन सशक्त था और देश की पूँजीवादी व्यवस्था का खूँखार अमानवीय चेहरा "मानवीय" मुखौटों से ढंका हुआ था तो न्यायपालिकाएँ भी शाकाहारी दिख जाती थीं।

लेकिन उदारीकरण की तेज आँधी से मुखौटे गिर गये और भीतर का राक्षस एकदम सामने आ गया। सरकार से लेकर प्रशासन, पुलिस, फौज तक अपने पूँजीवादी आकाओं की सुरक्षा और उनके मुनाफ़े की राह की बाधाओं को दूर करने के लिए मज़दूर जमात पर हमलावर तरीके से टूट पड़े। तो भला न्यायपालिकाएँ कैसे पीछे रह सकती थीं। बस उन्होंने भी रामनामी दुपट्टों के झीने पर्दे को तार-तार कर दिया और खुले पूँजीवादी भोंपू बन गये।

न्यायपालिका के ताजा फैसले को इसी रोशनी में देखा जा सकता है।

शहीदों का अपमान और मज़दूरों की त्रासदी

(बिगुल संवाददाता)

पन्तनगर (ऊधमसिंह नगर)। जब ट्रेड यूनियन आन्दोलन टूट-फूट बिखराव का शिकार होता है, नेतृत्व गलत हाथों में पहुँच जाता है तब मज़दूर आबादी को ढेरों त्रासदियाँ झेलनी पड़ती हैं। आज का दौर ऐसा ही है। इसीलिए उसे पल-पल अपमान का घूंट पीना पड़ता है।

ऐसा ही कुछ हो रहा है उत्तरांचल के पन्तनगर विश्वविद्यालय के मज़दूरों के साथ। ढेरों मूलभूत सुविधाओं से वंचित ये मज़दूर नेतृत्व द्वारा बार-बार तो ठगे जाते ही रहे हैं। लेकिन उनके लिए सबसे त्रासदपूर्ण स्थिति तो यह है कि उनके वीर शहीदों की शहादत तक को साजिशन नापाक किया जा रहा है। 13 अप्रैल का दिन (वही 13 अप्रैल जब 1919 में अंग्रेज हुक्मरानों ने जलियावाला बाग में सैकड़ों निहत्थे स्त्री-पुरुष-बच्चों को मौत के घाट उतार दिया था) यहाँ के मज़दूरों के लिए भी शौर्य और कुर्बानी का दिन है। 1978 में इसी दिन जनरल डायर की देशी औलादों ने, संघर्षरत मज़दूर स्त्री-पुरुषों पर बर्बर ताण्डव रचा था। ढेरों लोग शहीद हो गये थे, कुछ मज़दूरों की लाशें तो आज तक नहीं मिलीं।

इस दिन को वहाँ के मज़दूर शहीद दिवस के रूप में मनाते हैं। शोक सभा करते हैं और शहीद चौक पर (गोलीकाण्ड स्थल जो अब शहीद चौक बन चुका है) फूल चढ़ाते हैं। लेकिन ट्रेड यूनियन आन्दोलन का जैसे-जैसे ह्रास होता गया, वैसे-वैसे न केवल श्रद्धांजलि कार्यक्रम एक अनुष्ठान में बदल गया, बल्कि यह चुनावबाज मदारियों, जातीय-मजहबी ठेकेदारों, मज़दूर आन्दोलन के सौदागरों से लेकर मंत्रियों-संत्रियों का जमघट स्थल बनता गया। कुछ एक बानगी गौरतलब है–

दो साल पूर्व पन्तनगर के संघर्षरत मज़दूरों ने लाठियाँ खायीं, एक बार फिर शानदार संघर्ष किया, लेकिन नेतृत्व ने जीत के मुकाम पर खड़े आन्दोलन को पीछे ढकेल दिया। और डेढ़ माह बाद, 13 अप्रैल के समारोह के मुख्य अतिथि बने प्रदेश के श्रम मंत्री। मज़दूर अपने को ठगा-सा महसूस करते हुए लच्छेदार भाषणों को सुनते रहे। पिछले साल कुलपति मजदूरों को पुरस्कृत करने आये (वैसे अब कुलपति भी शहीद स्थली पर पुष्पांजली चढ़ाने आते हैं!) अभी इस वर्ष पूरा मंच चुनावी मदारियों, ट्रेड यूनियन सौदागरों, पूर्व मंत्री, विश्वविद्यालय सर्वोच्च परिषद सदस्य आदि से भरा रहा और उनके शहीदी भाषणों का तांता लगा रहा। शहीद अपमानित होते रहे। और मज़दूर बेबस मूक दर्शक बैठे रहे। उलटाव और पराजय के दौर में मज़दूर ऐसी ही त्रासदपूर्ण स्थितियों को झेलने के लिए अभिशप्त होता है।

बोलते आँकड़े... चीखती सच्चाइयाँ...

घुट–घुट कर जीना छोड़ो

I. महंगाई की मार सीधे पेट पर

सरकार का दावा है कि उदारीकरण की नीतियाँ लागू होने (1991) के बाद से देश लगातार विकास कर रहा है। मुद्रास्फीति की दर लगातार घट रही है। पिछले वर्ष के साढ़े पाँच प्रतिशत से घटकर पिछली तिमाही की समाप्ति पर यह लगभग चार प्रतिशत के आस-पास पहुँच गयी। थोक मूल्य सूचकांक में लगातार कमी बनी हुई है। वगैरह-वगैरह... इससे यह भ्रम पैदा होता है कि आम जनता की जीवन स्थिति में लगातार सुधार होता है। लेकिन हकीकत बिल्कुल उलट है। विगत दो दशक के दौरान रुपये के अवमूल्यन और आय में हुई सापेक्षिक बढ़ोत्तरी को भी ध्यान में रख लिया जाये तो नीचे दिये गये आँकड़े भी सच्चाई की एक तस्वीर प्रस्तुत कर देते हैं।

1. दैनिक उपभोग की कुछ चीजों की महंगाई का ग्राफः–

उपभोग की वस्तु	1982	1991	1998	2006
चावल–साधारण	1.90	6.50	10.00	12.00
–मध्यम	4.00	9.50	15.50	18.00
गेहूँ–	1.90	4.20	6.30	8.50
दाल–अरहर	7.50	18.00	29.00	34.00
-चना	6.00	12.00	16.00	30.00
–मसूर	4.00	14.00	20.00	32.00
–उड़द	7.00	14.00	20.00	48.00
चाय की पत्ती	26.00	75.00	160.00	200.00
चीनी–राशन पर	4.30	6.20	11.40	13.00
–खुले बाजार में	7.00	10.00	16.00	24.00

(प्रति किलो खुदरा भाव (रुपयें में) मार्च-2006)

2. पेट्रो पदार्थों की आसमान छूती कीमतें

उपभोग की वस्तु	1982	1991	1998	2006
पेट्रोल	10.00	16.00	23.94	45.49
डीजल	6.00	9.00	19.87	31.40
रसोई गैस	65.00	-	-	295.00

(प्रति लीटर/प्रति सिलेण्डर खुदरा भाव (रुपयें में) मार्च-2006)

3. पत्र भेजना

(संचार क्रान्ति के इस दौर में जिसका उपयोग मुख्यतः आम जनता ही करती है) भी भारी खर्चीला है :–

उपभोग की वस्तु	1982	1991	1998	2006
लिफाफा–प्रथम 20 ग्राम	0.60	1.00	3.00	5.00
–अतिरिक्त 20 ग्राम	0.40	1.00	3.00	5.00
अन्तर्देशीय–	0.35	0.75	1.50	3.00
रजिस्ट्री–	5.00	8.00	10.00	22.00
बुक पोस्ट–प्रथम 50 ग्राम	0.30	1.00	2.00	4.00
–अतिरिक्त 50 ग्राम	0.15	1.00	2.00	2.00
साधारण पोस्ट कार्ड	0.15	0.25	0.25	0.50

II. 30 करोड़ बेरोजगारों की फ़ौज

बेरोजगारी की रफ्तार और तेज गति से बढ़ती जा रही है। खुद सरकारी आँकड़े बताते हैं कि देश का हर दसवाँ व्यक्ति बेरोजगार है। सच्चाई यह है कि आज 30 करोड़ से ज्यादा बेरोजगारों की फ़ौज खड़ी हो चुकी है। डेढ़ दशक पूर्व उदारीकरण की नीतियाँ शुरू करते हुए तत्कालीन नरसिंह राव-मनमोहन सिंह सरकार ने दावा किया था कि आर्थिक वृद्धि की दर 3.5 फीसदी से बढ़कर 7 फीसदी हो जाये तो बेरोजगारी की समस्या अपने आप दूर हो जाएगी। हकीकत यह है कि भारत का आर्थिक स्वस्थ्य तो लगातार फलता-फूलता रहा और आर्थिक वृद्धि दर 7 फीसदी को कौन कहे 8 फीसदी से भी ऊँची बनी हुई है। और खत्म होने की जगह बेरोजगारी सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती ही जा रही है। आइये इसे सरकारी तथ्यों की रोशनी में देखें :–

बेरोजगारी की बढ़ती रफ्तार

क्र.स.	वर्ष	फीसदी दर
1.	1993-94	5.99
2.	1999-2000	7.32
3.	2001-2005	8.87
4.	2004-2005	9.11

यही है उदारीकरण की विध्वंसकारी तस्वीर। सोचो! क्या ऐसे ही महंगाई-बेकारी की मार सहते रहोगे? सच्चाई को देखो और संघर्ष की राह चुनो।

राजा ने जनसंघर्षों के आगे घुटने टेके

(पेज 1 से आगे)

ने बहादुराना ढंग से कर्फ्यू को तोड़ते हुए पुलिस व सशस्त्र बलों का मुकाबला करते हुए प्रदर्शनों को कामयाब बनाया। आँसू गैस के गोले, लाठियाँ-गोलियाँ और जेलों की यातनाएँ–कुछ भी नेपाली जनता की जनवाद की आकांक्षाओं को कुचल नहीं सकीं। निरंकुश सामन्ती राजशाही के खिलाफ़ लोगों की नफ़रत का अन्दाज़ इसी से लगाया जा सकता है कि शुरू में सात दलों के गठबन्धन ने केवल चार दिनों के प्रदर्शनों का आह्वान किया था लेकिन जनदबाव में यह तब तक जारी रहा जब तक राजा ने संसद बहाली की घोषणा नहीं कर दी।

दुनिया के पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शासक वर्गों द्वारा नियंत्रित मीडिया नेपाली माओवादियों के बारे में जो भी अनर्गल-प्रलाप करे, सच यह है कि राजशाही विरोधी जनान्दोलन के इस नये उफान की ज़मीन तैयार करने में नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) की प्रमुख भूमिका रही है।

यह सच्चाई किसी से छुपी नहीं है कि नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) सहित सात दलों के गठबन्धन में शामिल राजनीतिक पार्टियाँ लम्बे समय तक राजशाही के साथ सौदेबाजी और समझौते करने और नेपाली अवाम की जनवाद की आकांक्षाओं के साथ बार-बार विश्वासघात के कारण अपनी साख खो चुकी थीं। इन पार्टियों के नेताओं के भ्रष्टाचार से भी नेपाली जनता नफ़रत करती थी। अगर एक बार फिर से इनकी खोयी साख बहाल हुई है तो इसका भी श्रेय विगत वर्ष नवम्बर में इन दलों और माओवादियों के साथ हुए उस 12 सूत्री समझौते को जाता है जिसमें यह तय हुआ था कि अगर ये दल अन्तरिम सरकार के गठन और उसकी निगरानी में नयी संविधान सभा के चुनाव के लिए दृढ़ता के साथ खड़े होते हैं तो माओवादी तब तक के लिए अपनी सशस्त्र कार्रवाइयों को स्थगित कर सकते हैं। मौजूदा जनान्दोलन इसी 12 सूत्री समझौते की देन है।

यह नहीं भूलना चाहिए कि सात दलों के गठबन्धन में शामिल हर दल 12 सूत्री समझौते के पहले नेपाल की "माओवादी समस्या" (ये सभी दल और भारत, चीन जैसे नेपाल के महत्वपूर्ण पड़ोसी देशों का शासक वर्ग, अमेरिकी-यूरोपीय साम्राज्यवादी और पूँजीवादी-साम्राज्यवादी मीडिया नेपाली जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष को इसी शब्दावली में व्यक्त करना पसन्द करते हैं) के समाधान के लिये संवैधानिक राजतंत्र और बहुदलीय लोकतंत्र के बीच तरह-तरह से गुन्ताड़े भिड़ाने का काम करते रहे हैं। वह भी तब, जब राजा को अरबों-खरबों के नक़द इमदाद और भारी मात्रा में सैनिक साजोसामान मुहैय्या कराने के बाद इन्हें समझ में आ गया कि "माओवादी समस्या" का सैनिक समाधान सम्भव नहीं है। अमेरिकी-ब्रिटिश साम्राज्यवादी ही नहीं दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र होने की डींग हाँकने वाले भारतीय शासक वर्ग और पूँजीवाद की राह पर सरपट भाग रहे चीन का नामधारी कम्युनिस्ट शासक वर्ग–सभी ने राजा को रुपये-पैसे और हथियारों से भारी मदद की।

पिछले साल फरवरी माह में, जब से राजा ने संसद भंग कर सत्ता अपने हाथों में ले ली, तब से भारतीय शासक वर्ग यह माला जपता चला आ रहा है कि नेपाल में शान्ति कायम करने के प्रयासों के दो स्तम्भ हैं–संवैधानिक राजतंत्र और बहुदलीय जनतंत्र। राजशाही के प्रति भारतीय शासक वर्गों का निहित स्वार्थों से उपजा प्रेम कितना गहरा है इसका घृणित नमूना ताज़ा जनान्दोलन के समय भी दिखायी दिया जब उसने इसी 'दो स्तम्भों' वाले फार्मूले के साथ कर्ण सिंह को नेपाल भेजा।

ऐसे समय में भी, जब नेपाली जनता की आकांक्षाओं के दबाव में खुद सात दलों का गठबन्धन संवैधानिक राजशाही के फार्मूले को ठुकराकर राजशाही के खात्मे और 'पूर्ण जनतंत्र' के लिए नई संविधान सभा के चुनाव तक संघर्ष जारी रखने पर तैयार हो चुका है, भारत सरकार 'दो स्तम्भों' के पिटे फार्मूले की फेरी लगाती रही। हद तो तब हो गयी जब राजा की 21 अप्रैल की घोषणा को नेपाली जनता ने हिकारत के साथ नकार दिया, जिसमें उसने कार्यपालिका पर अपने अधिकार को छोड़ते हुए सात दलों से अपील की थी कि वह अपना प्रधानमंत्री चुन ले, तब भी भारत सरकार की अक्ल ठिकाने नहीं आयी। सड़कों पर जनता नारे लगा रही थी–'ज्ञानेन्द्र चोर है,' 'ज्ञानेन्द्र की घोषणा धोखा है' और भारत सरकार 'दो स्तम्भों' को थामे खड़ी थी और सबसे आगे बढ़कर ज्ञानेन्द्र की घोषणा का अति उत्साह से स्वागत कर रही थी। इसी तरह पहले भी भारत सरकार ने अमेरिकी आकाओं के सुर में सुर मिलाते हुए माओवादी आन्दोलन को 'आतंकवाद' कहना शुरू कर दिया था जबकि उस समय खुद नेपाली शासक वर्ग ने ऐसा कहना शुरू नहीं किया था।

बहरहाल, जनसंघर्षों के आघातों से मुँहकी खाते हुए राजा ज्ञानेन्द्र ने संसद बहाली की घोषणा कर दी है। अब देखना यह है कि गिरिजा प्रसाद कोइराला के नेतृत्व में सात दलों के गठबन्धन की सरकार शपथ लेने के बाद बिना शर्त नयी संविधान सभा के चुनाव की घोषणा करती है या माओवादियों की आशंकाओं को सही साबित करते हुए जनता के साथ विश्वासघात कर राजशाही के साथ समझौते का रास्ता अख्तियार करती है। अमेरिकी और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों सहित, भारत और चीन का शासक वर्ग अभी भी इस समझौते की जी-तोड़ कोशिशों में लगा हुआ है।

सात दलों के गठबन्धन और माओवादियों के बीच मध्यस्थता के लिए भारत से संसदीय जनवाद के जोशीले बौद्धिक पैरोकार के रूप में सीताराम येचुरी भी नेपाल रवाना होने वाले हैं। भारतीय शासक वर्गों की शुभकामनाएँ और दुआएँ पूरी तरह उनके साथ हैं। यह देखना दिलचस्प होगा कि कम्युनिस्ट क्रान्ति और सर्वहारा जनवाद का मार्ग तजकर "शुद्ध जनवाद" की फेरी लगाने वाले काउत्स्की जैसे सर्वहारा क्रान्ति के गद्दारों का यह वारिस नेपाली जनता को कौन सी सौगात पेश करता है।

यहीं पर हम अपनी उस चिन्ता और आशंका को भी ज़ाहिर करने से यहाँ खुद को नहीं रोक पा रहे हैं जो नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के शीर्ष नेतृत्व द्वारा जनवाद के बारे में व्यक्त किये गये विचारों से प्रकट होती है। विगत शताब्दी के दो महान सर्वहारा क्रान्तियों और समाजवाद के महान प्रयोगों के दौरान जनवाद के व्यवहार के अनुभवों पर आधारित जो विचार सामने आये हैं वे जनवाद के वर्गीय-चरित्र की समझ को धुँधला बनाने वाले हैं। यूँ तो चुनावों में भागीदारी के बारे में जो "नयी समझ" और जनवाद के विस्तार के जो "नये आयाम" प्रकट किये गये हैं उनमें कुछ भी ऐसा नहीं कि जिसे नया या मार्क्सवाद की विचारधारा में इजाफा कहा जा सके। यह दुनिया भर के सच्चे सर्वहारा क्रान्तिकारियों के लिए चिन्ता का विषय है कि तमाम आरोहों-अवरोहों और कुछेक विच्युतियों के बावजूद पिछले एक दशक से नेपाल में जनयुद्ध का सफलता और कुशलतापूर्वक नेतृत्व और संचालन करने वाली ने.क.पा. (माओवादी) जनवाद के बारे में बुर्जुआ विभ्रमों की शिकार होती दिखायी दे रही है। यह सचमुच गहरी चिन्ता का विषय है। विश्व सर्वहारा क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में हमने देखा है कि विचारधारात्मक दायरे का हर भटकाव संघर्ष की किसी न किसी मंजिल में भीषण नुकसान पहुँचाता है।

इसलिए सभी सच्चे सर्वहारा क्रान्तिकारियों की यह कामना होगी कि ने.क.पा. (माओवादी) का नेतृत्व शीघ्रातिशीघ्र इस विचारधारात्मक गलती को दुरुस्त कर ले।

बहरहाल, फिलहाल तात्कालिक महत्व का बुनियादी प्रश्न यह है कि नेपाली अवाम के क्रान्तिकारी जनसंघर्षों ने निरंकुश राजशाही के अन्त की शुरुआत में जो विजय हासिल की है उसे निर्णायक विजय बनाने की राह की बाधाएँ हटाने के लिए क्या जनसंघर्षों के नये आघातों की जरूरत होगी? सात दलों का गठबन्धन क्या नेपाली जनता की आकांक्षाओं को पूरा करेगा या राजा के 'आखिरी दाँव' में उलझकर एक बार फिर भविष्य की ओर पीठ करके खड़ा होगा? अगले कुछ महीनों में इन सवालों के निर्णायक जवाब मिलने की उम्मीदें की जानी चाहिए।

28.04.06

मई दिवस की विरासत सहेजनी होगी!

(पेज 1 से आगे)

प्रदर्शन का दिन बनाकर रख दिया है।

मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा को याद करते हुए रूस में कायम हुए पहले समाजवादी मज़दूर-राज के नेता लेनिन ने 1904 में मई दिवस के पर्चे में लिखा था कि मई दिवस वह दिन है, *"जब तमाम देशों के मेहनतकश वर्ग-चेतना की दुनिया में प्रवेश करने का जश्न मनाते हैं, इंसान के हाथों इंसान के शोषण और दमन के खिलाफ अपनी संघर्षशील एकजुटता का इज़हार करते हैं, करोड़ों मेहनतकशों को भूख, गरीबी और जिल्लत की ज़िन्दगी से आज़ाद कराने की प्रतिज्ञा करते हैं।"*

लेनिन ने हमेशा मई दिवस के राजनीतिक चरित्र को खास तौर पर मज़दूरों के सामने उजागर किया। वर्ष 1900 में खारकोव के पार्टी नेताओं द्वारा आठ घण्टे के कार्यदिवस की माँग के साथ अन्य छोटी-मोटी और शुद्ध आर्थिक माँगों को मिलाने के लिए उनकी कड़ी भर्त्सना की थी। उनका स्पष्ट मानना था कि इससे मई दिवस का राजनीतिक चरित्र धुँधला होता है। उन्होंने लिखा था :

"इन माँगों में सबसे पहली माँग होगी आठ घण्टे के कार्यदिवस की आम माँग जो सभी देशों के सर्वहारा वर्ग ने की है। इस माँग को सबसे पहले रखा जाना खारकोव के मज़दूरों की अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग के साथ एकजुटता को दर्शाता है और निश्चित रूप से इसीलिए इस माँग को छोटी-मोटी आर्थिक माँगों से नहीं मिलाया जाना चाहिए, जैसे—फोरमैन द्वारा अच्छे बर्ताव की माँग या तनख्वाह में दस फीसदी बढ़ोत्तरी की माँग। आठ घण्टे के कार्यदिवस की माँग पूरे सर्वहारा वर्ग की माँग है और सर्वहारा उसे एक-एक मालिक के सामने नहीं बल्कि सरकार के सामने रखता है, क्योंकि ये ही आज के सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं। सर्वहारा वर्ग यह माँग समूचे पूँजीपति वर्ग के सामने रखता है जो सभी उत्पादन के साधनों का मालिक है।"

मई दिवस की इसी क्रान्तिकारी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए रूस के मज़दूरों ने अपनी क्रान्तिकारी पार्टी और लेनिन की अगुवाई में महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति के ज़रिये 1917 में अपने पहले राज्य की स्थापना की जिससे प्रेरणा लेते हुए दुनिया भर में मज़दूर वर्ग ने अपनी क्रान्तिकारी पार्टियों का निर्माण व गठन किया। रूस में मज़दूरों की क्रान्तिकारी सत्ता ने पहले लेनिन और फिर स्तालिन के नेतृत्व में एक नये समाजवादी समाज की रचना कर यह दिखा दिया कि पूँजी की गुलामी और शोषण-उत्पीड़न से मुक्त एक नयी दुनिया कोरी कल्पना नहीं है। रूसी मज़दूर वर्ग ने अपनी क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में अविश्वसनीय कुर्बानियों का इतिहास रचते हुए हिटलर के मानवताविरोधी फासीवादी अभियान को धूल चटाने में अग्रणी भूमिका निभायी। केवल पूँजी के टुकड़खोर इतिहासकार और बुद्धिजीवी ही इस ऐतिहासिक सच्चाई को नकारकर झूठ का पहाड़ खड़ा कर सकते हैं।

1917 की महान रूसी क्रान्ति द्वारा दिखाये गये रास्ते पर चलते हुए यूरोप सहित एशिया-अफ्रीका-लैटिन अमेरिका के अनेक देशों में मज़दूर वर्ग ने अपने राजनीतिक संघर्ष की क्रान्तिकारी परम्परा को आगे बढ़ाया और विश्व पूँजीवाद के अनेक किलों को ध्वस्त किया। 1949 में सम्पन्न चीन की महान नवजनवादी क्रान्ति रूस के

बाद अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग की दूसरी सबसे बड़ी विजय थी। यहाँ मज़दूर वर्ग ने अपनी क्रान्तिकारी पार्टी और उसके नेता माओ त्से-तुङ के सृजनात्मक और कल्पनाशील नेतृत्व में दुनिया के सबसे बड़ी आबादी वाले अत्यन्त पिछड़े अर्धसामन्ती-अर्धऔपनिवेशिक देश में समाजवाद के अत्यन्त मौलिक और रचनात्मक प्रयोग किये।

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग का यह ऐतिहासिक दुर्भाग्य रहा कि रूस में 1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद और चीन में 1976 में माओ त्से-तुङ की मृत्यु के बाद उन्नत मंजिलों की ओर आगे बढ़ता समाजवादी प्रयोगों का सिलसिला जारी नहीं रह सका। पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच समाजवादी समाज के अन्तर्गत जारी जीवन-मरण के संघर्ष में इन देशों के भीतर पूँजीपति वर्ग को कामयाबी मिल गयी। पूँजीपति वर्ग ने इन देशों की राजसत्ता पर कब्ज़ा कर समूचे उत्पादन तंत्र और समाज के समूचे ढाँचे को अपने नियंत्रण में कर लिया और नये सिरे से पूँजीवादी विकास की राह पर चल पड़े। सोवियत संघ और चीन की मज़दूर सत्ताएँ फिलहाल इतिहास का हिस्सा बन चुकी हैं और इन देशों में जारी पूँजीवादी विकास की नयी यात्रा वहाँ के मज़दूर-मेहनतकश जमात के लिए नरक यात्रा बन चुकी है। लेकिन दुनिया के मज़दूर आन्दोलन का इतिहास गवाह है कि मज़दूर वर्ग ने अपनी जीतों से ज्यादा अपनी हारों से सीखा है। पूँजी और श्रम के विश्व-ऐतिहासिक महासंग्राम के पहले चक्र में हार से दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशकीमती सबक हासिल किये हैं जिन्हें सहेजने-समेटने-आत्मसात करने की कोशिश में अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग जुटा हुआ है। ऐतिहासिक महासंग्राम के नये चक्र की तैयारियों में जुटा दुनिया का मज़दूर वर्ग जब अपनी क्रान्तिकारी परम्पराओं को फिर से याद कर रहा है तो ऐसे में मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा को याद करना बेहद-बेहद ज़रूरी है।

नयी परिस्थिति, नई सम्भावनाएँ, नई चुनौतियाँ

मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा को आज के समय में तमाम-मज़दूरों-मेहनतकशों और उनके हरावलों को पल भर के लिए आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहिए। आज के समय में यह खास तौर पर इसलिए ज़रूरी है क्योंकि मज़दूर वर्ग की गद्दार पार्टियों और उनसे जुड़ी यूनियनों, मज़दूर आन्दोलन के भीतर छुपे तमाम पूँजीवादी घुसपैठियों की गन्दी करतूतों से हमारे देश का मज़दूर आन्दोलन एक दुर्भाग्यपूर्ण मुकाम पर खड़ा है। मज़दूर वर्ग को दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाइयों में उलझाकर, उसकी एकता को खण्ड-खण्ड में तोड़कर और उसके ऐतिहासिक कार्यभार को गुमनामी के अँधेरों में डुबाकर मज़दूर आन्दोलन को एक ऐतिहासिक बेबसी की हालत में पहुँचा दिया गया है। मज़दूर आन्दोलन को इस स्थिति से बाहर निकालने के लिए हमें मई दिवस की स्पिरिट ताज़ा करनी होगी।

देश के मज़दूर आन्दोलन का नये सिरे से क्रान्तिकारीकरण करने की कोशिशें तब तक आगे नहीं बढ़ायी जा सकतीं जब तक कि हम साम्राज्यवाद के मौजूदा नये दौर की, जिसे भूमण्डलीकरण कहा जा रहा है, नई परिस्थिति की सही समझ नहीं कायम कर लेते। साम्राज्यवाद के इस नये दौर ने जहाँ एक ओर हमारे सामने नयी-नयी चुनौतियों-कठिनाइयों को जन्म दिया है वहीं दूसरी ओर नयी सम्भावनाएँ भी पैदा हुई हैं जिसका हमें ज़मीनी स्तर पर कुशलता से उपयोग करना होगा।

भूमण्डलीकरण का मायाजाल रचकर देश का शासक वर्ग और साम्राज्यवादी ताकतें मिलकर मज़दूर वर्ग पर ताबड़तोड़ हमले जारी रखे हुए हैं जबकि मज़दूर वर्ग बचाव की लड़ाई लड़ता हुआ अब तक हासिल की गयी ज़मीन को भी छोड़ता हुआ पीछे हटता जा रहा है। चाहे सार्वजनिक क्षेत्रों के निजीकरण का सवाल हो या अकूत कुर्बानियाँ देकर हासिल किये गये तमाम आर्थिक- राजनीतिक अधिकारों का—पीछे हटना और हारना एक अटूट सिलसिला बनता जा रहा है।

आज मज़दूर आन्दोलन के सामने इस सिलसिले को रोकने की फ़ौरी चुनौती ही नहीं है। असली चुनौती है अर्थवाद-सुधारवाद के दलदल से बाहर निकालकर मज़दूर आन्दोलन को क्रान्तिकारी पुनरुत्थान की राह पर ले चलना। मई दिवस की क्रान्तिकारी स्पिरिट को भुलाकर या उसके राजनीतिक चरित्र को धुँधलाकर इस चुनौती से हरगिज नहीं जूझा जा सकता। आज शासक वर्गों के हमलों के सामने टिककर खड़े होने और अपनी ज़मीन को बचाने या खोयी ज़मीन को वापस लेने की फौरी चुनौती का मुकाबला भी तब तक नहीं किया जा सकता जब तक मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी हरावल इस दूरगामी चुनौती के सामने सही ढंग से खड़े नहीं होंगे।

केन्द्र सरकार देश के मज़दूर वर्ग पर अगला बड़ा हमला करने की तैयारियों में जुटी है। देशी-विदेशी तमाम पूँजीपति अर्से से यह माँग कर रहे हैं कि मौजूदा श्रम कानूनों को बदलकर उन्हें 'लचीला' बनाया जाये यानी उन्हें मज़दूरों के काम के घण्टे मनमाने ढंग से बढ़ाने, मनचाही छँटनी करने, ज्यादातर काम ठेके पर कराने की छूट मिले। पर मज़दूर वर्ग के प्रतिरोध की सम्भावना से डरी सरकारें अब तक यह साहस नहीं जुटा सकी हैं। लेकिन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की बुनियादी आन्तरिक गति का तकाजा है कि सरकार देर-सबेर यह दुस्साहस कर बैठेगी। अभी हाल में ही प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पूँजीपतियों की एक सभा में आश्वासन दिया कि श्रम कानूनों में बदलाव के लिए 'उचित समय पर' कदम उठाये जायेंगे। मनमोहन सिंह का इशारा साफ़ है। वह 'उचित समय' आयेगा जब सरकार को यह विश्वास हो जायेगा कि वह मज़दूरों के प्रतिरोध की कमर तोड़ने में कामयाब हो जायेगी। कहने की ज़रूरत नहीं कि 'उचित समय' को करीब लाने में मज़दूर आन्दोलन के भीतर घुसे पूँजीपति वर्ग के एजेण्टों की खास भूमिका होगी।

देश के मज़दूर आन्दोलन के मौजूदा बिखराव, आम मज़दूर आबादी के बीच फैली व्यापक निराशा के बावजूद एक बात निश्चित है कि जब भी सरकार श्रम कानूनों में बदलाव का दुस्साहस करेगी तो मज़दूर वर्ग की ओर से प्रतिरोध होगा ही। मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी हिरावलों के सामने इस प्रतिरोध संघर्ष के लिए व्यापक मज़दूर आबादी की तैयारी एक अहम तात्कालिक राजनीतिक कार्यभार होना चाहिए। लेकिन यह कार्यभार भी तभी पूरा किया जा सकता है जब हम अपने दूरगामी राजनीतिक कार्यभार को कभी न भूलें। दूसरे शब्दों में, ज़रूरत है दूरगामी और तात्कालिक राजनीतिक कार्यभार को कुशलतापूर्वक जोड़ने की। आज इन कार्यभारों को अच्छी तरह पूरा करने की प्रमुख शर्त है कि न हम चुनौतियों से भयभीत हों और न ही सम्भावनाओं की अनदेखी करें।

यह सही है कि सार्वजनिक क्षेत्रों के निजीकरण, स्थायी नौकरियों की जगह अधिकाधिक काम ठेके पर कराने, असेम्बली लाइन को बिखरा देने आदि के ज़मीनी स्तर पर मज़दूरों को संगठित करना पहले के मुकाबले ज्यादा कठिन और चुनौतीपूर्ण हो गया है। लेकिन यह ऐसी कोई अपराजेय बाधा नहीं जिसे पार न किया जा सके। मज़दूर वर्ग की अगुवा कतारों ने उन्नीसवीं सदी के पूँजीवाद के उस दौर में भी व्यापक मज़दूर आबादी को संगठित करने की राह निकाल ली थी जब दुनिया भर में अधिकांश मज़दूर आबादी असंगठित थी और मालिक मज़दूरों से अठारह-अठारह, बीस-बीस घण्टे काम लेते थे। 'आठ घण्टे कार्यदिवस' का आन्दोलन यानी खुद मई दिवस का शानदार इतिहास इसका गवाह है। आज के समय में, जब 'संगठित क्षेत्र' का विघटन हो रहा है और व्यापक मज़दूर आबादी का अधिकांश 'असंगठित क्षेत्र' में मौजूद है, तब इस सर्वाधिक क्रान्तिकारी क्षमता वाली आबादी को संगठित करने में मई दिवस के इतिहास से हम काफी कुछ सीख सकते हैं। साथ ही हम नई-नई युक्तियाँ और तरीके ईजाद कर सकते हैं अगर हम उन सम्भावनाओं और अनुकूलताओं की सही पहचान करें जो इस नये दौर में उपस्थित हुई हैं।

आज के समय में मज़दूर वर्ग-आन्दोलन के लिए सबसे अनुकूल स्थिति यह पैदा हुई है कि आम मज़दूर आबादी की राजनीतिक चेतना को उन्नत करने के लिये बिल्कुल नया भौतिक आधार तैयार हुआ है। आम मज़दूर आज अपने रोजमर्रा के अनुभव में यह देख रहा है कि उसकी लड़ाई किसी एक कारखाने के मालिक से नहीं बल्कि मालिकों की समूची संगठित जमात और उनके हितों की नुमाइन्दगी करने वाली हुकूमत से है। किसी एक कारखाना केन्द्रित संघर्ष तक में मज़दूर यह देख रहे हैं कि तमाम कारखानों के मालिक, पुलिस, कोर्ट, राजनीतिक पार्टियाँ और सरकारें एक साथ खड़ी हैं। मज़दूर वर्ग का राजनीतिक संघर्ष संगठित करने के लिए इस अनुकूल स्थिति के मद्देनज़र आज की उनकी प्रमुख राजनीतिक माँगों को सूत्रबद्ध करना और आम मज़दूर आबादी के बीच सृजनात्मक ढंग से प्रचार-प्रसार व शिक्षण का काम संगठित करना होगा। ठेका प्रथा खत्म करने की माँग आज व्यापक मज़दूरों की एक आम फ़ौरी राजनीतिक माँग है। इसके साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य व आवास के अधिकार सम्बन्धी माँगों और न्यूनतम मज़दूरी आदि को नये सिरे से निर्धारित करने जैसी कुछ अहम फ़ौरी माँगों पर भी पूरे पूँजीपति वर्ग और उसकी हुकूमत के खिलाफ़ लामबन्द करने की व्यावहारिक व कारगर युक्तियाँ लागू करनी होंगी।

कहने का मतलब यह कि आज देश के विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में अस्थायी, दिहाड़ी और ठेका मज़दूरों की विशाल आबादी का जो जमावड़ा है उन्हें राजनीतिक संघर्ष के लिए लामबन्द और संगठित करने पर क्रान्तिकारी हरावलों को सर्वाधिक ध्यान देना होगा। अपनी ताकत और ऊर्जा का अधिकांश यहीं झोंकना होगा क्योंकि ये किसी एक कारखाने में नहीं काम करते। इस नाते उनके अन्दर पेशागत संकुचन की मनोवृत्ति नहीं होती और अर्थवाद का शिकार होने का खतरा भी नहीं होगा। जैसे-जैसे देश की मज़दूर आबादी के इस बहुलांश को संगठित करने का काम आगे बढ़ेगा वैसे-वैसे बचे-खुचे सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के अपेक्षाकृत बेहतर जीवनस्थिति वाले परमानेण्ट मज़दूरों की चेतना के क्रान्तिकारीकरण की ज्यादा बेहतर सम्भावनाएँ तैयार होंगी। साथ ही, तभी इन मज़दूरों को अर्थवादी-ट्रेड यूनियनवादी धन्धेबाजों के चंगुल से मुक्त किया जा सकेगा। किसी भ्रम की गुंजाइश न रहे इसलिए यह बात साफ़ कर देना ज़रूरी है कि यहाँ हमने आज की परिस्थिति में व्यापक मज़दूर आबादी को संगठित करने के लिए मज़दूर वर्ग

(पेज 8 पर जारी)

मई दिवस की विरासत...

(पेज 7 से आगे)

के क्रान्तिकारी हिरावलों की प्राथमिकताओं की चर्चा की है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि अगर कार्यक्षेत्र में कहीं परमानेण्ट मज़दूरों का कोई महत्वपूर्ण संघर्ष उठ खड़ा हो और सांगठनिक शक्ति इजाजत दे तो भी उस संघर्ष में शिरकत कर संघर्षरत मज़दूरों की राजनीतिक चेतना बढ़ाने के अवसर से पूरी तरह आँखें मूँद लेना चाहिए।

मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी नेतृत्व को संगठित करने की चुनौतियाँ

विश्व मज़दूर आन्दोलन के इतिहास की यह निरपवाद सच्चाई है कि मज़दूर वर्ग का राजनीतिक संघर्ष संगठित करने में उसका वास्तविक नेतृत्व एक क्रान्तिकारी राजनीतिक पार्टी ही कर सकती है। मज़दूर वर्ग के आगे बढ़े हुए तत्व या उसका हिरावल दस्ता आम मज़दूर-मेहनतकश आबादी को विभिन्न यूनियनों या अन्य जनसंगठनों में संगठित करने के साथ ही स्वयं को भी क्रान्तिकारी विचारधारा की बुनियाद पर एक क्रान्तिकारी पार्टी के भीतर संगठित करता है। दूसरे शब्दों में, व्यापक मज़दूर आबादी का राजनीतिक संघर्ष संगठित करने का काम एक क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण और गठन के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है। दोनों एक दूसरे को द्वन्द्वात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। जब पार्टी निर्माण और गठन का काम आगे बढ़ेगा तो आम मज़दूर आबादी का राजनीतिक संघर्ष आगे बढ़ेगा और आम मज़दूरों का राजनीतिक संघर्ष आगे बढ़ते जाने के साथ पार्टी निर्माण व गठन की प्रक्रिया भी उन्नत धरातल पर पहुँचती जायेगी।

दुनिया के क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के इतिहास का निचोड़ यह है कि आज किसी भी देश में मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी राजनीतिक पार्टी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी ही हो सकती है जिसकी विचारधारात्मक बुनियाद मार्क्सवाद-लेनिनवाद- माओवाद हो। मज़दूर वर्ग का कोई भी हिरावल ग्रुप या संगठन जो इतिहास के इस निचोड़ से सहमत नहीं वह आज के समय में मज़दूर वर्ग की सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण व गठन के काम को सफलतापूर्वक अंजाम नहीं दे सकता। मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण व गठन की समस्या के नज़रिये से अगर आज देश के भीतर क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग आन्दोलन पर नज़र दौड़ायी जाये तो स्थिति को कतई आशाजनक नहीं कहा जा सकता। आज सी.पी.आई. और सी.पी.आई.(एम.) जैसी पार्टियों से कोई भी वर्ग सचेत मज़दूर क्रान्तिकारी राजनीतिक संघर्ष में नेतृत्व की उम्मीद नहीं रखता। मज़दूर क्रान्ति से विश्वासघात और पूँजीवादी व्यवस्था के साथ इनकी यारी इतनी जगजाहिर हो चुकी है कि अब किसी भ्रम की गुंजाइश बची नहीं है। लेकिन क्या 1967 में सी.पी.एम. के संशोधनवादी रास्ते से बगावत के बाद फूटी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी धारा की मौजूदा स्थिति के वस्तुपरक आकलन-मूल्यांकन के आधार पर देश में एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण व गठन की प्रक्रिया के बारे में पूरे भरोसे के साथ यह कहा जा सकता है कि तमाम उतार-चढ़ावों के बाद अब गाड़ी सही दिशा में जा रही है? अफ़सोस कि हमारी तमाम सदिच्छाओं के बावजूद इस सवाल का सकारात्मक जवाब देना सम्भव नहीं हो पा रहा है।

यह विश्वास अब अन्धविश्वास की शक्ल ले चुका है कि नक्सलवाड़ी की विरासत को स्वीकार करने वाले तमाम कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों-संगठनों के बीच राजनीतिक बहस-मुबाहिसे से देर-सवेर एक सर्वभारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हो जायेगा। अगर बीते लगभग चार दशकों के दौरान यह प्रक्रिया कहीं नहीं पहुँच सकी तो आज किस आधार पर उम्मीदें पाली जायें। जिसे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता है उसकी हालत क्या है? कुछ संगठन वामपन्थी दुस्साहसवाद की राह से इंच-इंच खिसकते-खिसकते कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर से संशोधनवादी शिविर में पलायन कर चुके हैं। कुछ ऐसे हैं जो वैदिक मंत्रोच्चार की तरह क्रान्ति और वर्ग संघर्ष की बातें अब भी करते हैं लेकिन उनका राजनीतिक-सांगठनिक आचरण कहीं से भी सी.पी.आई. और सी.पी.आई.(एम) से भिन्न नहीं दिखायी पड़ता। मज़दूर वर्ग के बीच इनका कार्य अर्थवाद के दलदल में धँसा हुआ है। कुछेक संगठन "वामपंथी" दुस्साहसवाद और मुहिमजोई के रास्ते पर इतना आगे निकल चुके हैं कि वापसी अब मुमकिन नहीं। कुछ ऐसे हैं जिनकी राजनीतिक-सांगठनिक लाइन "वामपंथी" दुस्साहसवाद और जुझारू अर्थवाद के मिश्रण का एक विचित्र व हास्यास्पद नमूना बनी हुई है। जनदिशा लागू करने के नाम पर समय-समय पर कुछ मोर्चे बनाना, इसके तहत कुछ आनुष्ठानिक किस्म के आयोजन करना, फिर मोर्चे का सुषुप्तावस्था में चले जाना, फिर बिना इसका कोई राजनीतिक सारसंकलन किये अनुभववादी ढंग से नये मोर्चे बनाने की कवायदों में जुट जाना भी इनकी विशेषता है। ज्यादातर संगठनों के लिए इतिहास थम गया है। ये आज भी 1963 की आम दिशा को बुनियादी तौर पर सही मानते हुए भूमिक्रान्ति का रट्टा मार रहे हैं। मार्क्सवाद इनके लिए कठमुल्ला सूत्र है, इसलिए ये पैर की साइज बढ़ने पर जूता बदल देने के बजाय पैर को ही काट-छाँटकर पंगु बन चुके हैं।

ये किसान समुदाय से एकता कायम करने के नाम पर धनी किसानों के आन्दोलनों के पुछल्ले और नरोदवाद के विकृत भारतीय संस्करण बन चुके हैं। कुछ मुक्त चिन्तकों के जमावड़े बनकर विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास पर बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं और कुछ बाहरी दुनिया से कोई हेलमेल न रखने वाले रहस्यमय गुप्त सम्प्रदाय बन चुके हैं। कुछेक बचे-खुचे ग्रुपों के बारे में यही कहा जा सकता है कि वे नेकनीयत हो सकते हैं पर उनकी स्थिति वामपंथी बुद्धिजीवियों के ग्रुपों से अधिक नहीं।

कुल मिलाकर यही है स्थिति कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की। निश्चित रूप से इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के बुनियादी कारण हैं जो इस शिविर की और भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन के पूरे इतिहास की विचारधारात्मक कमजोरी में निहित हैं, जो अलग से चर्चा की माँग करते हैं। लेकिन मौजूदा स्थिति यही है कि इस शिविर के घटक संगठनों के बीच राजनीतिक वाद-विवाद से एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी के अस्तित्व में आने की सम्भावना नहीं दिखायी देती। केवल किसी चमत्कार से ही ऐसा सम्भव है जिसपर कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी विश्वास नहीं करते। हम कहना यह चाहते हैं कि जिसे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता है वह मूलतः और मुख्यतः विघटित हो चुका है। यह सही है कि आज भी क्रान्तिकारी कतारों का सबसे बड़ा हिस्सा मा.ले. संगठनों/ग्रुपों के तहत ही संगठित है। यानी कहा जा सकता है कि कतारों का संघटन (कम्पोजीशन) अभी भी क्रान्तिकारी है। लेकिन जिन संगठनों की नीतियों का संघटन (कम्पोजीशन) शुरू से ही गलत रहा है उनमें गम्भीर विचारधारात्मक भटकावों का पैदा होना लाजिमी है। इन्हीं नीतियों के वाहक नेतृत्व का कम्पोजीशन ज्यादातर संगठनों में आज अवसरवादी हो चुका है। इस नेतृत्व से 'पालिमिक्स' यानी राजनीतिक वाद-विवाद के ज़रिये एकता के रास्ते पार्टी पुनर्गठन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। यानी भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों-संगठनों के कमज़ोर विचारधारात्मक आधार, गलत सांगठनिक कार्यशैली और गलत कार्यक्रम पर अमल की आधी-अधूरी कोशिशों के लम्बे सिलसिले ने आज उन्हें इस मुकाम पर पहुँचा दिया है कि उनके सामने पार्टी के पुनर्गठन का नहीं बल्कि नये सिरे से निर्माण का प्रश्न केन्द्रीय हो गया है।

चीजें कभी अपनी जगह रुकी नहीं रहतीं। वे अपने विपरीत में बदल जाती हैं। आज अव्वलन तो विचारधारा और कार्यक्रम के विभिन्न प्रश्नों पर बहस-मुबाहिसे से एकता कायम होने की स्थिति ही नहीं दीखती और यदि यह हो भी जाये तो एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी नहीं बन सकती क्योंकि कुल मिलाकर घटक संगठनों-ग्रुपों के बोल्शेविक चरित्र पर ही सवाल उठ खड़ा हुआ है।

यथार्थ से साक्षात्कार भ्रम की मृग-मरीचिका में जीने से हमेशा बेहतर होता है। आज देश के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन का यथार्थ इतना ही कड़ुआ और मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी नेतृत्व को नये सिरे से संगठित करने का कार्यभार इतना ही चुनौतीपूर्ण है।

आज का सबसे महत्वपूर्ण सवाल है बोल्शेविज़्म की स्पिरिट बहाल करने की, आन्दोलन में भारी मात्रा में नये रक्त संचार की। हमें नई मज़दूर क्रान्ति का हरावल दस्ता तैयार करने के लिए आम मेहनतकशों के रोजमर्रे के जीवन और संघर्षों के बीच लगातार हरसम्भव तरीके का इस्तेमाल करते हुए उनकी क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षा के काम को जारी रखना होगा, उन्हें वर्ग सचेत और जुझारू बनाना होगा, फिर सबसे उन्नत चेतना वाले जुझारू मज़दूरों को मज़दूर क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते, रणनीति आदि की शिक्षा देकर नेतृत्वकारी टुकड़ियों का विकास करना होगा।

हमें ज्यादा से ज्यादा तादाद में ऐसे मध्यवर्गीय युवाओं के बीच से भी क्रान्तिकारी भरती करनी होगी जो अपने वर्गीय आधार को तोड़कर सर्वहारा वर्ग से जुड़ सकें और पेशेवर (पूरावक्ती) क्रान्तिकारी संगठनकर्ता अथवा सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में काम कर सकें। इसके साथ ही हमें आम जनता के हर उस हिस्से को सर्वहारा वर्ग के साथ संयुक्त मोर्चे में शामिल करने के लिए हरचन्द कोशिश करनी होगी जो साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के जुवे तले पिस रहा है।

सर्वहारा वर्ग के हिरावल दस्ते के फिर से निर्माण की प्रक्रिया आज प्रारम्भिक अवस्था में है, लेकिन वह आगे बढ़ चुकी है। इसी प्रक्रिया में, मज़दूर वर्ग और अन्य मेहनतकश वर्गों के बीच राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन का काम आगे बढ़ते जाने के साथ ही मज़दूर वर्ग भी उस ताकत को हासिल करना शुरू कर देगा जिसके बूते एक दिन वह आगे बढ़कर संसदीय वामपंथी और अर्थवादी भाँड़ों-विदूषकों के हाथों से मई दिवस का परचम छीन लेगा तथा अपनी विरासत अपने कब्जे में ले लेगा।

किसकी कीमत पर बढ़ रही है मुट्ठी भर अरबपतियों की जमात?

(बिगुल संवाददाता)

अमेरिकन पत्रिका 'फोर्ब्स' ने एक बार फिर दुनिया भर के अरबपतियों की सूची प्रकाशित की हैं। इस वर्ष जारी सूची में 793 अरबपति हैं जिसमें 23 अरबपति भारतीय हैं पिछले वर्ष की तुलना में 10 भारतीय सहित 102 नये अरबपति इसमें शामिल हो गये। इन अरबपतियों की कुल परिसम्पत्ति 2.6 खरब डॉलर है जिसमें पिछले एक वर्ष के दौरान अट्ठारह प्रतिशत की वृद्धि हुई है। उल्लेखनीय है कि पहली बार जारी इसकी सूची में 140 अरबपति शामिल थे। यानी उदारीकरण व वैश्वीकरण के इस दौर में लुटेरों की जमात के पास धन की वर्षा जारी है।

जिस वक्त अरबपति लुटेरों की यह सूची जारी हुई, ठीक उसी दिन एक छोटी-सी और खबर आयी कि आंध्रप्रदेश में कर्ज के मकड़जाल में उलझे एक किसान ने पूरे परिवार सहित आत्महत्या कर ली है। गृह मंत्रालय के नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार भारत में पिछले सात वर्षों में 13,622 किसानों की आत्महत्या के मामले दर्ज किये गये हैं। यह है दुनिया के विकास का एक आइना। यानी धनपशुओं की बढ़ती पूँजी का स्रोत व्यापक मेहनतकश आबादी की तबाही-बर्बादी ही है। आइये एक नज़र दुनिया के हालात पर डालें।

सूखे के कारण समूचा पूर्वी अफ्रीका जबर्दस्त भुखमरी, अकाल, और गरीबी से जूझ रहा है। सहारा क्षेत्र के अफ्रीकी देशों में एक तिहाई आबादी कुपोषण का शिकार है और यह संख्या लगातार बढ़ रही है। हालात ये हैं कि अन्न की कमी के कारण 35 लाख अफ्रीकी ज़िन्दगी और मौत के बीच जूझ रहे हैं। प्राप्त खबरों के अनुसार उत्तरी केनिया में कम से कम चालीस लोग भूख के कारण मौत के मुँह में समा गये। तंजानिया के मसासी जिले का तूली गाँव, जो भयंकर भुखमरी को झेल रहा है, के 500 घर में से महज 150 घर बचे हुए हैं। भुखमरी और कुपोषण का प्रतीक बन चुके सोमालिया में 17 लाख लोग अकाल ग्रस्त हैं।

इन मुल्कों में राहत के नामपर कुछ कवायदें ही होती रही हैं। लुटेरों का सरगना अमेरिका इन देशों में अपने गोदामों में भरा सड़ा अनाज और जैव-प्रसंस्कृत चीजें भेजकर अपनी पीठ थपथपा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में हर वर्ष 90 लाख या प्रतिदिन चौबीस हज़ार लोगों की भूख और कुपोषण से मौत होती है। 1945 में खाद्य एवं कृषि संगठन की स्थापना के बाद से अब तक 40 करोड़ से अधिक लोग भूख और बुनियादी जरूरतों के अभाव के कारण अकाल मौत का शिकार हो गये हैं। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार भूख और कुपोषण से पूरे विश्व में प्रतिदिन लगभग 1 लाख लोगों की मत्यु हो जाती है।

विश्व विकास रिपोर्ट के 2000-2001 के अनुसार एक अरब तीस करोड़ लोग समाज के हाशिए पर हैं जो एक डॉलर प्रतिदिन से भी कम में गुजारा करते हैं। पॉपुलेशन रेफरेंस ब्यूरो के 2005 की रिपोर्ट के अनुसार विश्व के 53 फीसदी लोग दो डॉलर से भी कम में अपना दिन काटने पर मजबूर हैं। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में 2004 में 85.2 करोड़ लोगों को पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाया जो पिछले साल की तुलना में एक करोड़ ज्यादा है। यानी भुखमरी और कुपोषण लगातार बढ़ता जा रहा है।

तो ये हैं चन्द एक उदाहरण जो सच्चाई की एक नंगी तस्वीर पेश करते हैं। एक तरफ मुट्ठीभर अरबपति धनपशुओं की बढ़ती समृद्धि और दूसरी ओर व्यापक आबादी का कुपोषण और कंगालीकरण। यही है पूँजीवादी लूट-तंत्र। पूँजीवाद का यही आम नियम है कि ज्यादा से ज्यादा मुनाफ़ा निचोड़ कर उसे पूँजी में तब्दील किया जाय। यह प्रक्रिया यानी अतिरिक्त मूल्य का दोहन जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, अमीरी और गरीबी की खाई उतनी ही तेज गति से बढ़ती जाती है। मुट्ठीभर अमीरजादे और ज्यादा अमीर होते जाते हैं और व्यापक मेहनतकश आबादी और गरीब होती जाती है। मुट्ठीभर धनपशुओं की समृद्धि की मीनारें, विलासिता के टापू खड़े होते जाते हैं और एक बड़ी आबादी कुपोषण का शिकार होती जाती है, बुनियादी सुविधाओं से वंचित होती जाती है। बेरोजगारी बढ़ती जाती है।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में यह प्रक्रिया और तेज गति पकड़ चुकी है। आने वाला हर पल भयानक से भयानक तस्वीर पेश कर रहा है।

पूँजीवाद जब तक जीवित रहेगा गरीबी और भुखमरी की एक ऐसी ही भयावह तस्वीर बनी रहेगी। यह तस्वीर तभी बदलेगी जब लूट और मुनाफ़े की इस पूरी मानवद्रोही व्यवस्था का जड़मूल समेत नाश किया जाये। यानी पूँजीवाद का खात्मा हो।

"संसदीय रास्ते" का खण्डन

(क्या मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टियों को पूँजीवादी संसदों या संसदीय चुनावों में भाग लेना चाहिए? मज़दूर क्रान्ति को आगे बढ़ाने में पूँजीवादी संसदों का इस्तेमाल किस रूप में किया जाना चाहिए? क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में ये सवाल बार-बार उठ खड़े होते रहे हैं। इस सवाल पर सही रुख निर्धारित करना मज़दूर वर्ग के लिए बुनियादी महत्व रखता है। इसी महत्व के मद्देनज़र हम 'महान बहस' के दस्तावेजों से एक प्रासंगिक अंश बिगुल के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। —सम्पादक)

"संसदीय रास्ते" के विचार का, जिसका दूसरी इण्टरनेशनल के संशोधनवादियों ने प्रचार किया था, लेनिन ने पूरी तरह खण्डन कर दिया था और वह काफ़ी समय पहले ही बदनाम हो चुका था। लेकिन ख्रुश्चोव की नज़र में, दूसरे विश्वयुद्ध के बाद संसदीय रास्ता अचानक फिर सही बनता दिखाई देता है।

क्या यह सच है? हरगिज नहीं।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की घटनाओं ने बार-बार यह साबित कर दिया है कि पूँजीवादी राज्य-मशीनरी का मुख्य अंग सशस्त्र बल है, संसद नहीं। संसद तो महज पूँजीवादी शासन का आभूषण और आवरण है। संसदीय प्रणाली को अपनाना या ठुकराना, संसद को कम सत्ता देना या ज्यादा, किसी एक किस्म का चुनाव कानून बनाना या दूसरी किस्म का—इन सब विकल्पों को चुनते समय हमेशा पूँजीवादी शासन की जरूरतों और उसके हितों को ध्यान में रखा जाता है। जब तक इस फ़ौजी-नौकरशाही मशीनरी पर पूँजीपति वर्ग का कब्जा रहेगा, तब तक या तो सर्वहारा वर्ग द्वारा "संसद में स्थायी बहुमत" प्राप्त करना ही असम्भव होगा, अथवा यह "स्थायी बहुमत" अविश्वसनीय साबित होगा। "संसदीय रास्ते" से समाजवाद की प्राप्ति बिल्कुल असम्भव है और महज धोखा है।

पूँजीवादी देशों में लगभग आधी कम्युनिस्ट पार्टियाँ अब भी गैरकानूनी हैं। चूँकि इन पार्टियों को कोई कानूनी दर्जा प्राप्त नहीं है, इसलिए उनके द्वारा संसदीय बहुमत प्राप्त करने का तो सवाल ही नहीं उठता।

मिसाल के लिए, स्पेनी कम्युनिस्ट पार्टी श्वेत आतंक में रहती है तथा उसके पास चुनाव लड़ने का कोई मौका नहीं है। यह बड़े दुर्भाग्य और खेद की बात है कि इबारूरी जैसे स्पेनी कम्युनिस्ट नेता भी स्पेन में "शान्तिपूर्ण संक्रमण" की बात कहते समय ख्रुश्चोव का अनुसरण कर रहे हैं।

जिन पूँजीवादी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों को कानूनी करार दिया गया है और जहाँ वे चुनाव में हिस्सा ले सकती हैं, वहाँ पूँजीवादी चुनाव कानूनों द्वारा लगायी गयी तमाम अनुचित पाबन्दियों के कारण, पूँजीवादी शासन के अन्तर्गत बहुमत प्राप्त करना उनके लिए बड़ा कठिन है। और यदि उन्हें चुनाव में बहुमत प्राप्त हो भी जाय, तो भी पूँजीपति वर्ग चुनाव कानूनों में संशोधन करके या अन्य उपायों से उन्हें संसद के अन्दर सीटों का बहुमत प्राप्त करने से रोक सकता है।

मिसाल के तौर पर, दूसरे विश्वयुद्ध से अब तक फ्रांस के इजारेदार पूँजीपतियों ने चुनाव कानून में दो बार संशोधन किया, और दोनों ही बार फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा संसद में प्राप्त की जाने वाली सीटों को काफ़ी घटा दिया। 1946 के संसदीय चुनाव में फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी को 182 सीटें प्राप्त हुईं। लेकिन 1951 के चुनाव में इजारेदार पूँजीपतियों द्वारा चुनाव कानून में संशोधन किये जाने के परिणामस्वरूप, फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी की सीटें काफ़ी घटकर सिर्फ 103 रह गयीं। यानी उसे 79 सीटों का घाटा हुआ। 1956 के चुनाव में फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी ने 150 सीटें प्राप्त कीं। लेकिन 1958 के संसदीय चुनाव के पहले, इजारेदार पूँजीपतियों ने फिर एक बार चुनाव कानून में संशोधन कर डाला, जिसका नतीजा यह हुआ कि फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा प्राप्त की गयी सीटों की संख्या बेहद घटकर सिर्फ 10 रह गयी, यानी उसे 140 सीटों का घाटा हुआ।

यदि किसी खास परिस्थिति में कोई कम्युनिस्ट पार्टी संसद में सीटों का बहुमत प्राप्त भी कर ले या चुनाव में जीतने की वजह से सरकार में शामिल हो जाय, तो इससे संसद या सरकार का पूँजीवादी स्वरूप नहीं बदल जाएगा, और इसका मतलब पुरानी राज्य-मशीनरी को चकनाचूर करना और नयी राज्य-मशीनरी की स्थापना करना तो बिल्कुल भी नहीं होगा। पूँजीवादी संसदों या सरकारों पर निर्भर रह कर बुनियादी सामाजिक परिवर्तन करना बिल्कुल असम्भव है। प्रतिक्रियावादी पूँजीपति वर्ग राज्य-मशीनरी को अपने कब्जे में रखकर चुनाव को रद्द कर सकता है, संसद को भंग कर सकता है, सरकार में शामिल कम्युनिस्टों को बरखास्त कर सकता है, कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी करार दे सकता है तथा जनता और प्रगतिशील शक्तियों का दमन करने के लिए बर्बर शक्ति का इस्तेमाल कर सकता है।

उदाहरण के लिए, 1946 में चिली की कम्युनिस्ट पार्टी ने पूँजीवादी रेडिकल पार्टी का चुनाव जीतने में समर्थन किया था तथा वहाँ एक मिली-जुली सरकार बनायी गयी थी, जिसमें कम्युनिस्ट भी शामिल थे। उस समय चिली की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता इतने आगे बढ़ गये थे कि उन्होंने इस पूँजीपति-नियंत्रित सरकार को "जनता की जनवादी सरकार" नाम दे डाला था। लेकिन एक साल से भी कम समय में, पूँजीपति वर्ग ने उन्हें सरकार छोड़ने पर मजबूर कर दिया, कम्युनिस्टों की व्यापक धर-पकड़ शुरू कर दी तथा 1948 में कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी करार भी दिया।

जब कोई मज़दूरों की पार्टी पतन के गड्ढे में गिर जाती है और पूँजीपति वर्ग की चाकरी करने लग जाती है, तो यह हो सकता है कि पूँजीपति वर्ग उसे संसद में बहुमत प्राप्त करने की और सरकार बनाने की इजाजत दे दे। कुछ देशों की पूँजीवादी सामाजिक-जनवादी पार्टियों की हालत ऐसी ही है। लेकिन ऐसी हालत में सिर्फ़ पूँजीपति वर्ग के अधिनायकत्व की ही हिफाजत होती है और वही मजबूत होता है; इससे एक उत्पीड़ित और शोषित वर्ग के रूप में सर्वहारा की स्थिति न तो बदलती है और न बदली ही जा सकती है। ऐसे तथ्य संसदीय रास्ते के दिवालिएपन को ही साबित करते हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की घटनाओं से यह भी जाहिर होता है कि यदि कम्युनिस्ट नेता संसदीय रास्ते पर विश्वास करने लगे, और "संसदीय जड़वामनवाद" के लाइलाज मर्ज़ के शिकार हो गये, तो वे न सिर्फ़ कहीं के नहीं रहेंगे, बल्कि अनिवार्य रूप से संशोधनवाद की दलदल में जा फँसेंगे, तथा सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य को बरबाद कर डालेंगे।

पूँजीवादी संसदों के प्रति सही रुख अपनाने के सम्बन्ध में मार्क्सवादी-लेनिनवादियों और अवसरवादियों-संशोधनवादियों के बीच हमेशा से बुनियादी मतभेद रहा है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादियों का हमेशा से यह मत रहा है कि किसी खास परिस्थिति में सर्वहारा पार्टी को संसदीय संघर्ष में भी भाग लेना चाहिए तथा संसद के मंच को पूँजीपति वर्ग के प्रतिक्रियावादी स्वरूप का भण्डाफोड़ करने के लिए, जनता को शिक्षित करने के लिए, और क्रान्तिकारी शक्ति संचित करने में मदद देने के लिए इस्तेमाल करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर, संघर्ष के इस कानूनी रूप का इस्तेमाल करने से इनकार करना गलत होगा। लेकिन सर्वहारा पार्टी को सर्वहारा क्रान्ति की जगह संसदीय संघर्ष को कभी नहीं देना चाहिए, अथवा इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि संसदीय रास्ते से समाजवाद में संक्रमण किया जा सकता है। इसे अपना ध्यान सदैव जन-संघर्षों पर केन्द्रित रखना चाहिए।

लेनिन ने कहा था :

क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी को पूँजीवादी संसद-व्यवस्था में इसलिए हिस्सा लेना चाहिए, ताकि जनता को जगाया जा सके, और यह काम चुनाव के दौरान तथा संसद में अलग-अलग पार्टियों के बीच के संघर्ष के दौरान किया जा सकता है। लेकिन वर्ग-संघर्ष को केवल संसदीय संघर्ष तक ही सीमित रखने, अथवा संसदीय संघर्ष को इतना ऊँचा और निर्णयात्मक रूप देना कि संघर्ष के बाकी सब रूप उसके अधीन हो जाएँ, का मतलब वास्तव में पूँजीपति वर्ग के पक्ष में चले जाना और सर्वहारा वर्ग के खिलाफ़ हो जाना है।[1]

उन्होंने दूसरी इण्टरनेशनल के संशोधनवादियों की इस बात के लिए भर्त्सना की थी कि वे संसद-व्यवस्था के चक्कर में पड़े हुए हैं और राजसत्ता हथियाने के क्रान्तिकारी कार्य को तिलांजलि दे चुके हैं। उन्होंने सर्वहारा पार्टी को एक चुनाव लड़ने वाली पार्टी में, एक संसदीय पार्टी में, पूँजीपति वर्ग की पिछलग्गू पार्टी में, और पूँजीपति वर्ग के अधिनायकत्व की रक्षा करने वाले साधन के रूप में बदल दिया। संसदीय रास्ते की पैरवी करके ख्रुश्चोव और उसके अनुयायियों का भी महज वही अन्त होगा, जो दूसरी इण्टरनेशनल के संशोधनवादियों का हुआ था।

1. लेनिन, "संविधान सभा के चुनाव और सर्वहारा अधिनायकत्व", अंग्रेज़ी संस्करण, विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह, मास्को, 1954, पृष्ठ 36।

ख़ुदा नहीं जनता की अदालत में होगा साम्राज्यवादी शैतानों का आख़िरी फ़ैसला

इराक पर हमले और इराकी अवाम के कत्लेआम को जायज़ ठहराने के लिए जार्ज बुश के बाद अब टोनी ब्लेयर ने भी ख़ुदा की पनाह ली है। पिछली 4 मार्च को एक टीवी चैनल पर प्रसारित साक्षात्कार में टोनी ब्लेयर ने फरमाया कि इराक युद्ध का आख़िरी फ़ैसला तो ख़ुदा की अदालत में ही होना है।

लन्दन के आई टी वी वन टीवी पर दिये गये साक्षात्कार में इस साम्राज्यवादी नरपिशाच ने इराक पर हमले के बारे में कहा, "अगर आप इन चीज़ों पर भरोसा करते हैं तो आपको मानना पड़ेगा कि वह फ़ैसला किसी और ने लिया था।" जब इण्टरव्यू लेने वाले ने अंग्रेज पूँजीपतियों के इस मक्कार नुमाइन्दे से बात को और साफ करने के लिये कहा तो उसने बका, "अगर आप ईश्वर पर यक़ीन करते हैं तो समझिये कि किसी और का मतलब ईश्वर से है।"

और आगे देखिये इण्टरव्यू लेने वाले पत्रकार माइकल पार्कीसन से टोनी ब्लेयर ने क्या-क्या बका। उसने बेशर्मी से कहा कि उसने नीतिगत निर्णय अन्तःकरण की पुकार पर लिया। वह इसाई आस्था से प्रेरित था। उसने कहा कि वह अपने बनाने वाले से मिलने के लिये तैयार है। उसने पत्रकार से हेकड़ी के साथ कहा कि "मेरे फ़ैसले के कारण मारे गये और बुरी तरह परेशान हुए लोगों के बारे में मैं ईश्वर को ही जवाब दूँगा।"

ज्यादा अर्सा नहीं गुज़रा जब साम्राज्यवादी डाकुओं के सरगना जार्ज बुश ने भी अपने ख़ूनी कारनामों को जायज ठहराने के लिए इसी तरह का बयान दिया था। उसने भी कहा था कि इराक पर हमला ईश्वर प्रेरित था। बुश और ब्लेयर की ये बकवासें तब सामने आयी हैं जब समूची दुनिया के सामने इराक हमले के बारे में उनके द्वारा गढ़ी गयी झूठी कहानी उजागर हो चुकी है। अमेरिकी और ब्रिटिश खुफिया विभाग का यह दावा पूरी तरह झूठा साबित हो चुका है कि सद्दाम हुसैन की सत्ता का अलकायदा से सम्बन्ध था। सद्दाम को सत्ता से बेदखल करने और कब्ज़े के बाद भी संयुक्त राष्ट्र संघ के हथियार निरीक्षकों को जनसंहार के हथियारों की मौजूदगी का एक भी सबूत हाथ नहीं लग पाया है। सफेद झूठ की आँधी चलाकर दुनिया की जनता की आँखों में धूल झोंकते हुए इराक पर हमले और लाखों बेगुनाह नागरिकों के कत्लेआम और विध्वंस को अमेरिकी और ब्रिटिश इंसाफपसन्द जनता की नज़रों में किसी भी तर्क से जायज़ ठहराना नामुमकिन होने पर ही बुश-ब्लेयर को ख़ुदा की शरण लेनी पड़ी है।

अमेरिका और ब्रिटेन के भीतर बुश-ब्लेयर की जंगजू नीतियों के खिलाफ़ आम लोगों का गुस्सा लगातार बढ़ता जा रहा है। इसे शान्त करने के लिए दोनों देशों के शासक वर्ग इसाई कट्टरपन्थी धार्मिक भावनाओं को उभाड़ने में जुट गये हैं। बुश-ब्लेयर के ये बयान इसी कवायद का हिस्सा है। दोनों देशों में सत्ताधारी वर्ग एशियाई मूल के आप्रवासियों, नीग्रो और देशज मूल के अन्य अश्वेत लोगों के खिलाफ़ नस्ली नफ़रत का ज़हर बो रहे हैं। अमेरिका में आप्रवासियों के खिलाफ़ कई कड़े कानून बनाये गये हैं। इसके खिलाफ़ मार्च के पहले हफ्ते में शिकागो, लास एंजल्स सहित अन्य कई प्रमुख शहरों में भारी संख्या में आप्रवासियों ने प्रदर्शन किये हैं। बढ़ती बेरोजगारी, रोज़गार सुरक्षा और अन्य सामाजिक सुरक्षा के मदों में कटौतियों के खिलाफ़ अमेरिका और समूचे यूरोपीय देशों में भीषण असन्तोष पनप रहा है। मार्च महीने के दूसरे पखवारे में फ्रांस में सरकार की नयी श्रम नीति के खिलाफ़ कई दिन जबर्दस्त जुझारू प्रदर्शन हुए जिसमें नौजवानों ने भारी संख्या में शिरकत की। इस नयी नीति के जरिये सरकार ने विभिन्न उद्योगों में छँटनी करना आसान बना दिया है। इस खदबदाते सामाजिक हालात में इन देशों का सत्ताधारी वर्ग जहाँ एक ओर नये-नये दमनकारी काले कानून बना रहा है वहीं समाज में नस्ली बँटवारे को भी हवा दे रहा है जिससे मेहनतकश जनता की एकता को तोड़ा जा सके। इन सभी देशों में इसाई कट्टरपन्थ का उभार तेज़ी से हो रहा है।

एक तरफ जनता का बढ़ता असन्तोष और दूसरी तरफ फासीवादी तौर-तरीकों की ओर शासक वर्गों का बढ़ता झुकाव—ये सभी विश्व पूँजीवाद के बढ़ते संकटों के सूचक हैं। साम्राज्यवादी लुटेरे अपने संकटों को टालने के लिए घरेलू स्तर पर फासीवादी हथकण्डों को आज़माने के साथ-साथ इन संकटों का बोझ एशिया-अफ्रीका-लैटिन अमेरिका के पिछड़े पूँजीवादी देशों पर लादने की कोशिशें भी तेज़ करेंगे। नतीजतन, विश्व पूँजीवाद की इन कमज़ोर कड़ियों पर भी दबाव बढ़ेगा। भूमण्डलीकरण के इस दौर में विश्व पूँजीवाद के संकटों का भी भूमण्डलीकरण बिल्कुल स्वाभाविक है। जैसे-जैसे संकट बढ़ता जायेगा, इन कमज़ोर कड़ियों वाले देशों में सर्वहारा क्रान्तिकारी शक्तियों के भी पुनर्गठन की प्रक्रिया आगे बढ़ेगी और विश्व पूँजी के दुर्गों पर फ़ैसलाकुन हमलों की परिस्थितियाँ भी तेज़ी के साथ तैयार होंगी।

बुश और ब्लेयर की जमातें मानवता के खिलाफ़ अपने अपराधों की सफाई देने के लिए आज भले ही ख़ुदा की अदालत का दरवाज़ा खटखटाती दिखायी दे रही हों उन्हें सज़ा तो जनता की अदालत ही सुनायेगी। मानवता के दुश्मन इन जमातों के लिए इतिहास ने पहले ही सज़ा मुकर्रर कर रखी है—सज़ा-ए-मौत। इसकी तामील विश्व सर्वहारा को करना है। वह घड़ी धीरे-धीरे और करीब आती जा रही है। शायद यही भाँपकर बुश-ब्लेयर मण्डली को ख़ुदा की याद सता रही है।

—योगेश पन्त

नारी सभा

साम्राज्यवादी लुटेरों द्वारा 'आज़ाद' कराये गये इराक में औरतों की गुलामी, बेबसी और यातनाओं की भयावह तस्वीर

इराक की अबू गरेब जेल आज अमेरिकी हैवानियत की एक ज़िन्दा मिसाल बन चुका है। यहाँ से समय-समय पर फूट निकलने वाली जानकारियों से सबसे अधिक सभ्य और जनतांत्रिक माने जाने वाली अमेरिकी व्यवस्था के वहशीपन की एक धुँधली-सी तस्वीर ही उभरती रही है। फिर भी दुनिया को इस सच्चाई की झलक तो मिल ही चुकी है कि इराक की बन्द जेलों में कैदियों, खासकर महिला बन्दियों को अमेरिकी सैनिकों और सुरक्षाकर्मियों के हाथों कितनी निर्मम, बर्बर और अपमानजनक यातनाओं से गुजरना पड़ा है। यह सिलसिला आज भी जारी है।

कब्जावर फौजों की संगीनों के साये में चुनी गयी 'जनता की सरकार' के सत्तारूढ़ होने के बाद भी हालत में न तो किसी तब्दीली की उम्मीदें थीं और न ही पूरी हुईं। इराकी जेलों में महिला कैदियों के ऊपर कैसे-कैसे ज़ुल्म ढाये जा रहे हैं इसकी ताज़ा मिसाल कागज के उस छोटे से पुर्जे के जरिये मिली, जिसे अभी हाल ही में अबू गरेब जेल में बन्द एक महिला कैदी किसी तरह जेल से बाहर भेज पाने में सफल हो पायी थी। बाद में इन घटनाओं की पुष्टि भी हुई जब स्वादी नाम की एक महिला अधिवक्ता को, जो इराक के तमाम उत्पीड़ित औरतों के मुकदमों की पैरवी कर रही थी, जेल में कैदी औरतों से बात करने का मौका मिला।

इस महिला अधिवक्ता ने 'गार्जियन' अखबार के हवाले से बताया कि कैदी स्त्रियाँ रो रही थीं। उनमें से एक ने बताया कि कई अमेरिकी सैनिकों ने उसके साथ बलात्कार किया। विरोध करने पर उन लोगों ने उसके हाथ की खाल फाड़ डाली। उसके हाथ में टाँके लगे हुए थे। यहाँ सभी औरतों के साथ उनका यही सुलूक होता है। कई स्त्रियाँ तो गर्भवती हो चुकी हैं। ऐसी अवस्था में भी वे अमेरिकी सुरक्षाकर्मियों और फ़ौजियों की यौन ज़्यादतियों की शिकार बनती हैं। एक दूसरी स्त्री कैदी ने बताया कि ऐसे हालात में वे जेल से बाहर जाकर भी क्या करेंगी क्योंकि बाहर के समाज में उन्हें और उनके परिवार को लांछना और अपमान ही तो झेलना पड़ेगा। इससे बचने के लिए तो कई औरतों ने जेल में ही आत्महत्या कर ली। उन्हें लगता है कि उनके लिए तो बस एक ही रास्ता है कि इराकी प्रतिरोधी दस्ता उन जेलों पर बम गिरा दे ताकि उनकी सभी यातनाओं का अन्त हो जाये।

अमेरिकी फ़ौज की दरिन्दगी यहीं खत्म नहीं होती। वे अपने मजे के लिए बुज़ुर्ग कैदी स्त्रियों के मुँह पर घोड़े की तरह लगाम कसते हैं और उन पर सवारी करते हैं। इतना ही नहीं, इन सभी कुकृत्यों की वे तस्वीरें खींचते हैं और वीडियो बनाते हैं। इस तरह की लगभग 18,000 खिंची तस्वीरों में कई तस्वीरें और वीडियो बलात्कार की पूरी प्रक्रिया दर्शाते हुए ली गयी हैं। बुश प्रशासन ने हालाँकि इन तस्वीरों और वीडियो टेप को सार्वजनिक करने पर रोक लगा दी थी फिर भी इनमें से कुछ किसी तरह सामने आ चुकी हैं और अमेरिकी सत्ता के असली दानवी चेहरे को बेनकाब कर गयी हैं। सिर्फ़ अबू गरेब जेल की ही नहीं अमेरिकी फ़ौज के अधीन इराक की सभी जेलों की यही दास्तान है। सच तो यह है कि अमेरिकी और ब्रिटिश कब्ज़े में पूरा इराक ही एक खुली जेल में तब्दील हो चुका है।

हर पल फ़ौजी संगीनों के साये तले जी रहे लोगों के जनवादी और मानव अधिकारों की तो यहाँ बात ही छोड़ दी जाये, जीवन ही सुरक्षित नहीं रह गया है। इराकी स्त्रियों के लिए सिर्फ़ जेल ही नहीं समूचा इराक ही यातनागृह बन चुका है। अपहरण और बलात्कार की घटनाएँ इतनी आम हो चुकी हैं कि हर औरत के मन में यह डर समाया रहता है कि अगली शिकार कहीं वही न हो जाये। सड़कों पर उनकी मौजूदगी नहीं के बराबर रहती है। घरों में भी वे सुरक्षित नहीं रहतीं। उनके दरवाज़े का सांकल खड़खड़ाया और उन्होंने दरवाज़ा खोलने में ज़रा भी देरी की तो इस देरी की कीमत उन्हें अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है। अमेरिकी सैनिक उन्हें सीधे माथे पर गोली मार देते हैं। इस लोमहर्षक ढंग से अकेले 'फालुजा' में ही वहत्तर स्त्रियाँ मार दी गयीं। लेकिन उनकी जिन्दगी भी मौत से बेहतर नहीं रही। उन्हें वेश्यावृत्ति के धन्धे में जबर्दस्ती उतारा गया। बाहरी देशों के लिए, जानवरों की तरह उनकी खरीद-फरोख्त हुई और ऐसी कोई एक दो घटनाएँ नहीं बल्कि व्यापक पैमाने पर हुआ। अमेरिकी फ़ौजों के इराक में उतरने और कब्ज़ा जमाने के पहले दूसरे अरब देशों की तुलना में वहाँ की औरतों को कहीं अधिक बराबर के जनवादी और नागरिक अधिकार हासिल थे। सार्वजनिक जीवन और सामाजिक सक्रियता में उनकी भागीदारी लगभग बराबर थी। शिक्षा के क्षेत्र में भी वे कहीं आगे बढ़ी हुई थीं और जिम्मेदार पदों पर आसीन थीं। लेकिन आज हालात यह है कि उनकी आज़ादी और इज्जत पर मार सिर्फ़ हमलावर फ़ौजों की ही नहीं, बल्कि अमेरिकी और ब्रिटिश हुक्मरानों द्वारा समर्थित स्थानीय कट्टरपंथी शिया सरकार की भी पड़ रही है।

इराक में अब नये संविधान और शरियत कानून के तरह कट्टरपंथी ताकतें वहाँ की स्त्रियों के लिए ड्रेस कोड बना रहे हैं, दर्जियों को आदेश दिया गया है कि औरतों के लिए उन्हें किस तरह का लिबास सिलना है। उन्हें नौकरियों से निकाला जा रहा है क्योंकि कठमुल्लों की नज़र में उनका एकमात्र काम घर और बच्चों की देखभाल करना है। पूरे इराक में अब महज 10 प्रतिशत ही कामकाजू स्त्रियाँ बची हैं जिनका रास्ता भी घर की चहारदीवारी के भीतर जाकर खत्म हो जाना तय है। इतना ही नहीं वहाँ इज्जत के नाम पर सैकड़ों स्त्रियाँ मौत के घाट उतारी जा चुकी हैं और हत्या वृद्धि की दर अब खतरनाक हदों के पार पहुँच गयी है। दक्षिणी इराक के बसरा जैसे इलाके में, जहाँ शिया कठमुल्लाओं का वर्चस्व है, औरतें यदि हिजाब/बुरका पहने बिना घर से बाहर निकलती हैं तो उन्हें अपहरण और बलात्कार की सज़ा तक भुगतनी पड़ सकती है। हालात ये हैं कि बसरा विश्वविद्यालय में नैतिक दरोगाओं का कोई एक या दूसरा गिरोह अक्सर यह मुआइना करता हुआ घूमता है कि किस छात्रा का चेहरा ढँका हुआ नहीं है। वे चलती कक्षाओं में भी घुस जाते हैं और यदि किसी छात्रा का चेहरा खुला है तो उसकी नाफरमानी की उसे सख़्त सज़ा देते हैं। अभी पिछले ही दिनों ऐसी दो छात्राओं को उन्होंने मौके पर ही जान से मार डाला था।

इस तरह सार्वजनिक जीवन से काटी जाकर और घरों में कैद होकर इराक की औरतें अपना स्वाभाविक जीवन जीने से वंचित कर दी गयी हैं। इसका घातक असर न सिर्फ़ मनोवैज्ञानिक रूप में बल्कि समाज के साथ उनके सम्बन्धों पर भी पड़ा है। इनकी दशा बिल्कुल अफगानी स्त्रियों जैसी होती जा रही है। अफगानी औरतों को 'मुक्त करने' का दावा करने वाला अमेरिका जाहिर है अब इराकी स्त्रियों को मुक्त कराने में लग गया है।

इराक की जर्जर होती आर्थिक संरचना की मार भी औरतों को ही सबसे अधिक झेलनी पड़ी है। 1990 के अमेरिकी हमले के समय से ही इराक के आर्थिक नाकाबन्दी के चलते वहाँ आम लोगों का जीवन बदहाल हो चुका है। रोजमर्रे के उपभोग वाली चीजें जुटाने के लिए उन्हें वाशिंग मशीन, फ्रिज जैसे सामानों को बेचना पड़ा रहा है। जाहिर है कि यह खामियाजा भी औरतें ही भुगत रही हैं। जहाँ तक बच्चों की शिक्षा का सवाल है, ऐसी आर्थिक कठिनाइयों में यदि चुनाव करना हो, तो स्पष्टतया लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है। लड़कियाँ स्कूल का मुँह नहीं देख पातीं।

इससे यह साफ जाहिर है कि अमेरिका की लुटेरी सत्ता एक तरफ इस्लाम की पितृसत्तात्मक कट्टरपंथी परम्पराओं को बढ़ावा देकर इराक में कबीलाई और सामन्ती सामाजिक सम्बन्धों को पुनर्जीवित करने का काम कर रही है तो दूसरी तरफ इस समृद्ध देश के आर्थिक ढाँचे को कमजोर कर अपने कब्ज़े के आधार को और मजबूत बना रही है।

—सुजाता

रपट

मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा को आगे बढ़ाने का आह्वान

रुद्रपुर (उधमसिंह नगर)। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस (मई दिवस) पर, बिगुल मज़दूर दस्ता, इंकलाबी मज़दूर केन्द्र, श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन और आनन्द निशिकावा इम्पलाइज यूनियन के संयुक्त आह्वान पर शहर के मज़दूरों ने अपने ऐतिहासिक त्योहार को मनाया। स्थानीय सरकारी अस्पताल से एक जुलूस निकाला गया जो मुख्य शहर व बाज़ार से होते हुए अम्बेडकर पार्क पहुँचकर सभा में तब्दील हो गया।

इस दौरान आयोजित सभा को सम्बोधित करते हुए वक्ताओं ने मई दिवस की परम्परा, आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम, आठ घण्टे मनोरंजन की माँग के संघर्ष और शहादतों, मज़दूरों के अन्तरराष्ट्रीय संगठन 'दूसरे इण्टरनेशनल' द्वारा 1889 में। मई को अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस मनाने की घोषणा, पूँजीपति के खिलाफ़ मज़दूर वर्ग के संघर्षों और सोवियत संघ से लेकर चीन तक, दुनिया के तेरह देशों में मज़दूर राज्यों की स्थापना और वक्ती तौर पर मज़दूर वर्ग के पराजय की चर्चा की। वक्ताओं ने वर्तमान दौर की चर्चा करते हुए कहा कि लम्बे संघर्षों के दौरान मज़दूरों को मिले सीमित अधिकार भी शासकों द्वारा छीना जा रहा है। 12-12 घण्टे काम की ड्यूटी सामान्य बात होती जा रही है और चौतरफा ठेकाकरण का बोलबाला है। जगह-जगह आधुनिक कसाईबाड़े के रूप में विशेष आर्थिक क्षेत्र बन रहे हैं। इस कठिन चुनौतीपूर्ण दौर में मई दिवस की सच्ची परम्परा को आगे बढ़ाने और एकताबद्ध संघर्ष की तैयारी में उतरने का मज़दूरों से आह्वान किया गया।

जुलूस और सभा के दौरान नारे लगाये गये और क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति हुई।

इसके अलावा 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की टोली ने 'नये संकल्प लें फिर से, नये नारे गढ़ें फिर से' शीर्षक से पर्चा निकाला और कारखाना क्षेत्रों व मज़दूर बस्तियों में सघन वितरण करते हुए मज़दूरों का आह्वान किया गया।

मई दिवस को अनुष्ठान मत बनाओ!

दिल्ली। मई दिवस पर, राजधानी क्षेत्र के करावल नगर इलाके में 'नौजवान भारत सभा' की टोली ने साइकिल रैली निकाली और नुक्कड़ सभाओं के माध्यम से मई दिवस की विरासत और वर्तमान समय की चुनौतियों पर चर्चा करते हुए मेहनतकश आवाम से बँटवारे के सभी दीवारों को तोड़कर अपनी फौलादी एकता कायम करने का आह्वान किया।

अंकुर इंक्लेव और प्रकाश बिहार की मज़दूर बस्तियों में आयोजित सभाओं में वक्ताओं ने कहा कि आज मई दिवस को अनुष्ठान बनाकर उसकी क्रान्तिकारी धार को कुन्द करने की चौतरफा साजिशें जारी हैं। ऐसे में शहीदों के सच्चे वारिसों को आगे बढ़कर कमान अपने हाथ में लेनी होगी और मई दिवस के क्रान्तिकारी स्पिरिट को ताज़ा करना होगा। वक्ताओं ने पिछले दिनों फ्रांस और नेपाल के आन्दोलनों का हवाला देते हुए कहा कि हमारी यह शानदार परम्परा रही है कि मज़दूरों के हर संघर्ष के साथ उनके बहादुर युवा सपूत भी कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते रहे हैं। आज एक बार फिर जब पूँजीपतियों और शासन-प्रशासन- सरकार से लेकर न्यायपालिका तक मेहनतकशों पर खुला हमला बोल रहे हैं, ठेकाकरण का चौतरफा बोलबाला है और दूसरी ओर 30 करोड़ बेरोजगारों की फौज खड़ी हो चुकी है, तो एक बार फिर मेहनतकशों के मुक्तिकामी संघर्षों के साथ छात्र-युवा आबादी को भी आगे बढ़कर संघर्ष का हमराही बनना होगा।

इस अवसर पर टोली द्वारा क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये गये।

‘माँ’ उपन्यास का अंश

मक्सिम गोर्की

“साथियो!” पावेल का गूँजता हुआ दृढ़ स्वर सुनायी दिया। माँ की आँखों में गर्म आँसू छलक आये और सहसा उसमें मानो नयी शक्ति का संचार हुआ। एक झटके के साथ वह जल्दी से अपने बेटे के पीछे जाकर खड़ी हो गयी। लोग उसके बेटे के चारों ओर इसी तरह खड़े थे जैसे चुम्बक के चारों ओर लोहे के टुकड़े।

माँ ने अपने बेटे के चेहरे की ओर देखा; उसे केवल उसकी गर्व और साहस से भरी चमकती हुई आँखें दिखायी दीं...

“साथियो! हमने फैसला किया है कि आज हम खुले आम यह बता दें कि हम कौन हैं और अपना झण्डा ऊँचा करें, जो न्याय, इन्साफ और आज़ादी का झण्डा है!”

एक लम्बा-सा सफेद बांस हवा में एक क्षण के लिए उठा और फिर नीचे आकर भीड़ को दो हिस्सों में बाँटता हुआ कहीं खो गया; एक क्षण बाद ही मज़दूर वर्ग का झण्डा ऊँचा हुआ और उत्सुकता से ऊपर उठी हुई आँखें एक बड़ी-सी लाल चिड़िया की तरह फहराते हुए उस झण्डे को देखने लगीं।

पावेल ने अपना हाथ उठाया और झण्डा हिलने लगा; दर्जनों हाथों ने लपककर झण्डे के चिकने सफेद बांस को थाम लिया; उनमें माँ का भी हाथ था।

“मज़दूर वर्ग ज़िन्दाबाद!” पावेल ने नारा लगाया।

सैकड़ों लोगों का कण्ठ-निनाद इसके उत्तर में गूँज उठा।

“सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी ज़िन्दाबाद! साथियो, यह हमारी पार्टी है, हमारे विचार इसी की देन हैं!”

जन-समुदाय उमड़ा पड़ रहा था। जो लोग इस झण्डे के महत्व को समझते थे वे आगे बढ़कर उसके निकट पहुँचने का प्रयत्न कर रहे थे; माजिन, समोइलोव और दोनों गूसेव-बन्धु पावेल के पास पहुँच गये। निकोलाई सिर झुकाये भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा था; माँ को ऐसा लगा कि कुछ दूसरे नौजवान, जिनकी आँखों में चमक थी, जिन्हें वह पहचानती भी नहीं थी, उसे एक तरफ को ठेले दे रहे थे...

“दुनिया के मज़दूर ज़िन्दाबाद!” पावेल ने फिर नारा लगाया। हजारों कण्ठों ने एक साथ आत्मा को आन्दोलित कर देने वाले जय-घोष से इसका उत्तर दिया जो उनके उल्लास और उनकी शक्ति के बढ़ते हुए तूफ़ान का परिचायक था।

माँ ने निकोलाई और एक किसी दूसरे आदमी का हाथ पकड़ लिया; आँसुओं से उसका गला रुँधा हुआ था, पर वह रोयी नहीं। उसके पाँव काँप रहे थे और उसने काँपते होंठों से बुदबुदाकर कहा :

“मेरे बच्चे...”

निकोलाई के चेचकरू चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड़ गयी। उसने झण्डे की तरफ एकटक देखते हुए अस्फुट स्वर में कुछ कहा और उसकी तरफ अपना हाथ बढ़ा दिया। अचानक उसने माँ के गले में बाँह डालकर उसे चूम लिया और हँस पड़ा।

“साथियो!” उक्रइनी ने बोलना आरम्भ किया। उसकी कोमल आवाज़ भीड़ की आवाज़ पर छा गयी। “हमने एक नये ईश्वर के नाम पर धर्मयुद्ध छेड़ा है! यह ईश्वर ज्ञान और समझ-बूझ, भलाई और सच्चाई का देव है! हमारा लक्ष्य बहुत दूर है, पर हमारा कांटेदार रास्ता हमारे सामने है! अगर किसी को सत्य की विजय पर विश्वास न हो, अगर किसी में इसके लिए अपनी जान देने की हिम्मत न हो, अगर किसी को अपनी ताकत पर भरोसा न हो और वह मुसीबतें उठाने से डरता हो तो वह हमारे साथ न चले! हमें सिर्फ़ ऐसे लोगों की जरूरत है जिन्हें हमारी विजय में विश्वास हो! जो लोग हमारे लक्ष्य को न समझते हों वे हमारे साथ न चलें, नहीं तो वे बेकार मुसीबत में फँसेंगे। साथियो, कतार बना लो! आज़ाद लोगों का त्योहार ज़िन्दाबाद! मई दिवस ज़िन्दाबाद!”

भीड़ बढ़ती गयी। पावेल ने झण्डा उठा लिया और जब वह उसे लेकर आगे बढ़ा तो झण्डा लहराने लगा; वह सूर्य के प्रकाश में चमक रहा था और उसकी लहरों में एक मुस्काराहट अँगड़ाइयाँ ले रही थी...

फ्योदोर माजिन ने गाना शुरू किया :

“ये सौ बरस के बन्धन...”

दर्जनों और स्वरों का मन्द प्रबल प्रवाह उस स्वर में मिल गया :

“हम आज करेंगे
भंग!..”

माँ माजिन के पीछे चल रही थी; उसके होंठों पर एक हर्ष-भरी मुस्कराहट खेल रही थी, फ्योदोर के सिर के ऊपर से वह झण्डे और अपने बेटे को देख सकने के लिए आँखों पर जोर दे रही थी। उसके चारों ओर हर्ष-भरे चेहरे और हर रंग की आँखें थीं और उसका बेटा और अन्द्रेई उसके आगे-आगे चल रहे थे। वह उन दोनों के गाने की आवाज़ सुन रही थी, अन्द्रेई की सुरीली आवाज, पावेल की भारी आवाज़ सुन रही थी, अन्द्रेई की सुरीली आवाज़ पावेल की भारी आवाज़ में मिलकर एक हो गयी थी :

“उठ जाग, ओ भूखे बन्दी,
अब खींचो लाल तलवार!..”

लोग भाग-भागकर झण्डे की तरफ़ आ रहे थे। भागते हुए वे चिल्लाते जा रहे थे पर उनके चिल्लाने की आवाज गीत की आवाज़ में डूबी जा रही थी–उसी गाने की आवाज़ में जिसे घर पर दूसरे गानों की अपेक्षा धीमे स्वर में गाया जाता था। यहाँ सड़क पर वह गीत बिना किसी रोकटोक के गूँज रहा था और उसमें बहुत जोर पैदा हो गया था। उस गीत में अदम्य साहस की गूँज थी और जहाँ उसमें लोगों का भविष्य की ओर जाने वाले लम्बे मार्ग को अपनाने का आवाहन किया गया था वहाँ यह भी स्पष्ट रूप से कह दिया था कि वह मार्ग कितना कठिन होगा। उसकी अखण्ड ज्योति ने हर उस चीज के अंधकार को निगल लिया था जो अपना महत्व खो चुकी थी, परम्परागत भावनाओं के सारे कचरे को साफ़ कर दिया था और नूतन के प्रति जो भय था उसे इस ज्योति ने जलाकर राख कर दिया था...

सहसा एक भयभीत और खिला हुआ चेहरा माँ के बगल में दिखायी दिया और ऊँचा, करुण स्वर सुनायी पड़ा :

“मीत्या, कहाँ जा रहा है?”

“जाने दो उसे,” माँ ने बगैर रुके हुए कहा। “उसकी चिन्ता न करो! शुरू में मुझे भी डर लगता था। मेरा बेटा तो सबसे आगे है–वह जो झण्डा लिये है!”

“नादानो, तुम कहाँ जा रहे हो? आगे सिपाही खड़े हैं!”

उस औरत ने जो लम्बे कद की और बिल्कुल सूखी हुई थी, सहसा आने खपच्ची जैसे हाथ से माँ को पकड़ लिया :

“और, देखो, गा भी तो क्या खूब रहे हैं!” उसने चिल्लाकर कहा। “और मेरा मीत्या भी गा रहा है।”

“डरो नहीं!” माँ ने समझाते हुए कहा। “उनका ध्येय बहुत पवित्र है... जरा सोचो–यदि लोगों ने ईश्वर के लिए अपने प्राणों की बलि न दी होती तो ईसा मसीह का कोई नाम भी न जानता!”

यह विचार सहसा माँ के मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध गया और इस सीधे-सादे स्पष्ट सत्य ने उसे पूरी तरह अपने वश में कर लिया। माँ ने उस औरत पर नजर डाली जो अब तक उसका हाथ पकड़े हुए थी।

“यदि लोगों ने ईश्वर के लिए अपने प्राणों की आहुति न दी होती तो ईसा मसीह का कोई नाम भी न जानता,” उसने एक विस्मय-भरी मुस्कराहट के साथ ये शब्द दुहराये।

सिज़ोव उसके बगल में आ गया।

“आज तो खुलकर सामने आ गया, है न?” उसने टोपी उतारकर गीत की ताल पर उसे हिलाते हुए कहा। “गाना भी बना लिया। और माँ, गाना भी कैसा, बढ़िया है, ठीक है न?”

“जरूरत जवानों की है जार को
तू भरती करा अपने लाल को...”

“उन्हें किसी का भी डर नहीं है!” सिज़ोव ने कहा। “और मेरा बेटा बेचारा अपनी कब्र में...”

माँ का दिल तेजी से धड़कने लगा, इसलिए वह पीछे रह गयी। शीघ्र ही वह धक्के खाकर एक तरफ को हट गयी और एक चहारदीवारी से जा लगी; लोगों की भीड़ एक लहर की तरह उसके पास से गुजर गयी। बहुत से लोग थे और उसे इसी बात की खुशी थी।

“उठ जाग, ओ भूखे बन्दी!..”

ऐसा मालूम होता था कि पीतल के एक बड़े-से भोंपू में से गीत निकलकर हवा में गूँज रहा है, लोगों में जागृति पैदा कर रहा है; कुछ लोगों को लड़ने के लिए तत्पर कर रहा है और कुछ दूसरे लोगों में एक तीव्र उत्सुकता, किसी नये सुख की एक अस्पष्ट सी भावना उत्पन्न कर रहा है; कहीं उसने क्षीण आशाएँ जागृत कीं तो कहीं बरसों से घुटते हुए क्रोध की ज्वाला भड़का दी। सब की आँखें उसी ओर देख रही थीं जहाँ आगे लाल झण्डा हवा में लहरा रहा था।

“देखो वे आ रहे हैं!” किसी ने आवेश में गरजकर कहा। “शाबाश, नौजवानो!”

और चूँकि उस व्यक्ति के हृदय में कोई इतनी तीव्र भावना भरी हुई थी जिसे वह शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता था इसलिए उसने एक मोटी-सी गाली दी। परन्तु दास-प्रवृत्तिवाली कुत्सा, अन्धी और मनहूस कुत्सा भी उस साँप की फुफकार की भाँति सुनायी दे रही थी जो सूर्य के प्रकाश से भाग रहा हो।

“नास्तिक कहीं के!” एक आदमी ने खिड़की से अपना मुक्का तानकर दिखाते हुए चीखकर कहा।

“महाराजाधिराज के खिलाफ़ बगावत, सम्राट के खिलाफ़ बगावत? विद्रोह?” किसी दूसरे आदमी की तेज आवाज सुनायी दी।

नर-नारियों के विशाल जन-समुदाय में, जो एक प्रबल प्रवाह की तरह आगे बढ़ रहा था, माँ ने चिन्ताग्रस्त चेहरे देखे। गीत से प्रेरित होकर जन-समुदाय ज्वालामुखी के लावा की तरह आगे बढ़ता जा रहा था; ऐसा प्रतीत होता था कि गीत के प्रवाह में हर चीज बही जा रही है, अपने सम्पर्क मात्र की शक्ति से वह मार्ग प्रशस्त करता जा रहा था। माँ ने बहुत दूर आगे लाल झण्डे को देखा और उसकी कल्पना में अपने बेटे की आकृति घूम गयी–कांसे का ढला हुआ-सा उसका ललाट और दृढ़ विश्वास की ज्योति से चमकती हुई उसकी आँखें।

माँ जुलूस में सबसे पीछे रह गयी थी; वह अब ऐसे लोगों के बीच में थी जो बड़े निश्चिंत भाव से चल रहे थे और चारों ओर इस बेपरवाही से देख रहे थे मानो वे कोई ऐसा नाटक देख रहे हों जिसका अन्त उन्हें पहले से ही मालूम हो। वे आवेशरहित स्वर में, पर दृढ़ विश्वास के साथ बातें कर रहे थे :

“एक टुकड़ी स्कूल में तैनात है और दूसरी फैक्टरी में...”

“गवर्नर साहब आ गये हैं...”

“सच?”

“मैंने अपनी आँखों से देखा है–अभी तो आये हैं!”

“तो हम लोगों से डर गये!” सन्तोष की साँस लेते हुए उसने एक गाली दी। “जरा सोचो–इतना फ़ौज-फाटा और गवर्नर साहब खुद!”

“ओह, मेरे लाड़लो!” माँ सोच रही थी।

परन्तु यहाँ जो शब्द वह सुन रही थी वे उसे उत्साहरहित और निष्प्राण प्रतीत हुए। उसने इन लोगों से आगे निकल जाने के लिए अपने कदम तेज किये; उनसे आगे निकल जाना कोई मुश्किल नहीं था क्योंकि वे बहुत धीरे-धीरे शिथिल चाल से चल रहे थे।

सहसा ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे जुलूस का अगला भाग किसी चीज से टकराया और एक भयभीत गर्जन के साथ पूरा जन-समुदाय पीछे हटने लगा। गीत भी एक बार काँप गया, परन्तु फिर वह पहले से भी ऊँचे स्वर में और तेज लय के साथ गूँज उठा। थोड़ी देर बाद गीत मन्द पड़ने लगा। एक-एक करके लोग गाना बन्द करते जा रहे थे। अलग-अलग कुछ आवाजें सुनायी दे रही थीं जो गीत को फिर पहले जैसा गौरव प्रदान करने का प्रयत्न कर रही थीं :

“उठ जाग, ओ भूखे बन्दी,
अब खींचो लाल तलवार!..”

परन्तु अब इस प्रयास में सब का बल, सब की एकबद्ध आस्था शामिल नहीं थी। अब उनके स्वरों में आतंक की प्रतिध्वनि थी।

चूँकि माँ को जुलूस का अगला हिस्सा नहीं दिखायी दे रहा था और उसे मालूम नहीं था कि क्या हुआ था, इसलिए वह भीड़ को चीरती हुई आगे बढ़ने लगी। आगे बढ़ते हुए वह पीछे हटनेवालों से बार-बार टकरा जाती थी; कुछ लोगों की त्योरियों पर बल थे, कुछ सिर झुकाये हुए थे, कुछ अन्य लोग खिसियायी हुई हँसी हँस रहे थे और कुछ ऐसे भी थे जो व्यंग्यपूर्वक सीटी बजा रहे थे। माँ ने उनके चेहरों को ध्यान से देखा; उसकी आँखों में जिज्ञासा, निवेदन, विनय सभी कुछ ही था...

“साथियो!” पावेल का स्वर सुनायी दिया। “सिपाही भी हमारे जैसे ही लोग हैं। वे हम पर हाथ नहीं उठायेंगे। और वे उठायें भी क्यों? बस इसलिए कि हम ऐसे सत्य की बात करते हैं जिसे हर आदमी को जानना चाहिये? उन्हें भी इस सत्य की बात को सुनना चाहिये। वे अभी इस बात को नहीं समझते पर जल्द ही वह समय आयेगा जब वे हत्या और लूट के झण्डे के नीचे हमारा विरोध करने के बजाय आज़ादी के झण्डे के नीचे हमारे कन्धे से कन्धा मिलाकर चलेंगे। और उनमें इस सत्य की समय-बूझ जल्दी पैदा करने के लिए हमें आगे बढ़ते रहना चाहिये। आगे बढ़ो, साथियो! एक कदम भी पीछे न हटो!”

पावेल के स्वर में दृढ़ता थी। उसके शब्दों में उत्साह की गूँज थी और उसका स्वर स्पष्ट था, फिर भी भीड़ तितर-बितर हो रही थी, एक-एक करके लोग जुलूस से बाहर निकलकर या तो घरों में घुस रहे थे या चहारदीवारियों का सहारा लेकर खड़े होते जा रहे थे। जुलूस अब आगे से पतला और पीछे चौड़ा हो गया था; सबसे आगे पावेल था जिसके सिर के ऊपर मज़दूरों का लाल झण्डा लहरा रहा था। या शायद यह कहना अधिक उचित होगा कि जुलूस उड़ने को तैयार पंख फैलाये हुए एक काले पक्षी के समान था और पावेल उसके शीर्षस्थान पर था...

सजेंगे फिर नये लश्कर

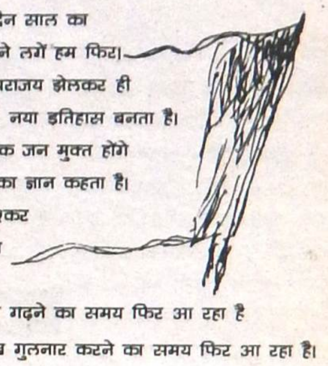

हर शहर से एक शिकागो उठ खड़ा हो
सोचकर आगे बढ़ें हम फिर।
मई दिवस बन जाए हर दिन साल का
यह सोचकर तैयारियाँ करने लगें हम फिर।
सुनो इतिहास कहता है, पराजय झेलकर ही
क्रान्तियाँ परवान चढ़ती हैं, नया इतिहास बनता है।
अँधेरा आज गहरा है, श्रमिक जन मुक्त होंगे
एक दिन निश्चित, समय का ज्ञान कहता है।
सजेंगे फिर नये लश्कर
मचेगा रण महाभीषण
उठो ओ शिल्पियो!
नवयुद्ध के उपकरण गढ़ने का समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख गुलनार करने का समय फिर आ रहा है।

–शशि प्रकाश

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2006-08

एकताबद्ध संघर्ष से फ्रांसीसी जनता की शानदार जीत
सरकार मज़दूर विरोधी कानून वापस लेने को बाध्य

फ्रांसीसी छात्रों और वहाँ की मेहनतकश अवाम के जुझारू संघर्ष के आगे अन्ततः फ्रांसीसी सरकार को झुकना पड़ा। उसे कुख्यात 'फर्स्ट इम्पलाइमेण्ट काण्ट्रैक्ट' (प्रथम रोजगार अनुबन्ध) कानून वापस लेना पड़ा। इस शानदार जीत के बाद वहाँ के छात्रों ने सरकार के दूसरे श्रम सुधारों और रोजगार के लिए नये प्रतिरोध संघर्ष का एलान कर दिया। हलाँकि यह पूरी खबर मीडिया से लगभग गायब रही।

दरअसल, फ्रांस के इस जनआन्दोलन की शुरुआत, सरकार द्वारा मालिकों को 'जब चाहो रक्खो, जब चाहो निकाल दो' का खुला अधिकार देने वाले इस नये कानून को पारित करने के खिलाफ़ हुई थी। विगत 16 मार्च को लगभग 7 लाख लोगों ने इस कानून को रद्द करने की माँग करते हुए पेरिस की सड़कों पर प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन में सेकेण्डरी स्कूल और विश्वविद्यालय के छात्रों ने जबर्दस्त भूमिका निभाई। धीरे-धीरे यह आन्दोलन पूरे फ्रांस में फैल गया और लगातार जारी संघर्षों का सिलसिला आगे बढ़ता गया। वहाँ 81 में से 64 विश्वविद्यालय और लगभग सभी सेकेण्डरी स्कूल पूरी तरह बन्द हो गये। 1968 के छात्र आन्दोलन का केन्द्र रहा सौरबॉन विश्वविद्यालय इस बार के आन्दोलन का भी केन्द्र बन गया और सरकार ने इसे पूरी तरह से खाली करा दिया।

इस बीच प्रदर्शनों को नज़रअंदाज करते हुए फ्रांसीसी सरकार ने इस मज़दूर विरोधी कानून को आधिकारिक तौर पर जारी भी कर दिया। देश के राष्ट्रपति याक शिराक और प्रधानमंत्री डोमिनिक डी विलेपां ने बड़ी ही मक्कारी के साथ इस कानून को रोजगार बढ़ाने वाला कानून कहा।

फिर क्या था, संघर्ष ने और गति पकड़ ली। संघर्ष और तीव्र हो गया। इस बीच वहाँ के विभिन्न ट्रेड यूनियनों के समूह ने सरकार को चेतावनी दे दी कि यदि उसने मज़दूर विरोधी इस कुख्यात श्रमकानून को ईस्टर त्योहार (17 अप्रैल) तक वापस नहीं ले लिया तो आन्दोलन और ज्यादा व्यापक रूप से आगे बढ़ाया जायेगा। उधर छात्रों का आन्दोलन लगातार तीखा होता चला गया। उन्होंने सड़क और रेल यातायात जाम करने के साथ ही कारखानों, बन्दरगाहों और हवाई अड्डों पर अवरोध खड़ा कर दिया। आन्दोलन की भयंकरता को देखकर सरकार भयभीत हो गयी और उसे अपने कदम वापस खींचने पड़े और जनता ने अपनी जुझारू एकता के दम पर यह जीत हासिल कर ली।

इस आन्दोलन में उतरी फ्रांस की भारी आबादी में छात्रों व मज़दूरों के साथ ट्रेड यूनियनें, वामपंथी और विपक्षी पार्टियाँ भी शामिल थीं। उन्होंने और विशेष रूप से छात्र-युवा आबादी ने साझे तौर पर अपने जुझारू संघर्ष के दम पर दैनिक गतिविधियों और व्यवस्था के महत्वपूर्ण कामों को लगभग ठप-सा कर दिया।

हलाँकि इस आन्दोलन में स्वतः स्फूर्तता ज्यादा थी, लेकिन उदारीकरण और विपर्यय के दौर में यह फ्रांसीसी जनता की एक महत्वपूर्ण जीत है। यह दुनियाभर के संघर्षशील जनता के लिए प्रेरणादायी है और पूँजीवादी-साम्राज्यवादी लुटेरों के लिए एक चुनौती।

लेकिन, जैसा कि फ्रांसीसी छात्रों ने ऐलान किया है कि यह एक शुरुआती जीत है और हमारा संघर्ष रोजगार के लिए और सरकार के श्रम सुधारों के खिलाफ़ ज़ारी रहेगा–संघर्ष को लगातार ज़ारी रखना होगा। क्योंकि प्रायः होता यह है कि मेहनतकश वर्ग एक जीत की खुशी में डूबा रहता है और लुटेरा पूँजीपति वर्ग तात्कालिक हार और जीत, दोनों स्थितियों में अगले हमले की तैयारी में जुट जाता है।

यहाँ यह भी गौरतलब है कि जीत के अंतिम मुकाम तक पहुँचने के लिए जुझारू एकताबद्ध संघर्ष के साथ ही वैचारिक परिपक्वता–यानी वैज्ञानिक विचारधारा से लैस होना भी बेहद जरूरी है। यह समझने की ज़रूरत है कि चाहे श्रम सुधारों का मसला हो या बेरोजगारी का, महंगाई, छंटनी-तालाबन्दी का, इनकी जड़ में मुनाफ़े की अन्धी हवस से पैदा हुई उदारीकरण की लुटेरी नीतियाँ हैं। इसलिए आज संघर्ष का मुख्य निशाना पूँजीवादी ताना-बाना ही है।

इस संघर्ष से सीखने का जो सबसे महत्वपूर्ण पहलू है वह यह कि अलग-अलग बँटकर नहीं, एकताबद्ध संघर्ष करना होगा और मेहनतकशवर्ग के सभी तबकों के साथ ही छात्र-युवा आबादी को भी एकसाथ कदम से कदम मिलाकर चलना होगा।

बहरहाल, फ्रांसीसी जनता की इस जीत से जहाँ पूरी दुनिया के मेहनतकशों और उनके बहादुर युवा सपूतों में खुशी की एक लहर व्याप्त है वहीं फ्रांस ही नहीं, पूरी दुनिया का पूँजीवादी खेमा भयाक्रान्त है कि कहीं दूसरे देशों में भी फ्रांसीसी आग की चिंगारी न पहुँच जाये क्योंकि पूँजीवादी लुटेरी नीतियों ने दुनिया के लगभग हर देश में–विशेष रूप से भारत जैसे तीसरी दुनिया के ग़रीब मुल्कों में जगह-जगह बारूद के ढेर एकत्रित कर दिये हैं। लुटेरों की भयाक्रान्तता को इस बात से भी समझा जा सकता है कि जो पूँजीवादी मीडिया तरह-तरह के मसालेदार खबरों से भरा रहता है, उसने आखिर क्यों इस शानदार और महत्वपूर्ण खबर को लगभग ब्लैकआउट कर दिया।

—एम. रंजन

क्या था 'फर्स्ट एम्प्लायमेंट कांट्रेक्ट'?

फ्रांस सरकार द्वारा जारी 'फर्स्ट एम्प्लायमेंट कांट्रेक्ट' (प्रथम रोजगार अनुबन्ध) नियोक्ताओं को 26 साल से कम उम्र के कर्मचारियों को जब चाहे रखने और जब चाहे निकालने की खुली छूट देता था।

इस नये कानून के तहत 26 वर्ष से कम उम्र के कर्मचारियों को ट्रायल (परिवीक्षा) के तौर पर रखे जाने का प्रावधान था। इस दौरान नियोक्ता बिना कारण बताये कर्मचारियों को निकाल सकता था। यही नहीं, दो साल के बाद यह कानून पुराने कांट्रेक्ट में बदल जाता जिससे पारम्परिक तौर पर नौकरी की जो सुरक्षा मुहय्या करायी जाती थी, वह खत्म हो जाती।

सरकार का दावा था कि इस नये कानून से सबके लिए रोजगार के बराबर अवसर पैदा होंगे। यानी अभी रोजगार के अवसर इसलिए पैदा नहीं हो रहे हैं क्योंकि नियोक्ताओं (मालिकों) को अपनी मर्जी से लोगों को रखने-निकालने का अधिकार नहीं है। भारत सरकार भी तो इन्हीं तर्कों के आधार पर श्रम के लचीलेपन की बात कर रही है और श्रम कानूनों को मालिक पक्षीय बनाने में जुटी है।

दरअसल, भूमण्डलीकरण, उदारीकरण के इस दौर का सूत्र वाक्य ही है–'हायर एण्ड फायर'–यानी जब चाहो काम पर रक्खो, जब चाहो निकाल दो।

फ्रांसीसी संघर्षों में मज़दूरों-छात्रों की जबर्दस्त एका

फ्रांस की यह शानदार परम्परा बन गयी है कि जब छात्र अपनी समस्याओं को लेकर सड़कों पर उतरते हैं तो वहाँ के मज़दूर-कर्मचारी भी उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते हैं। और जब मज़दूर वर्ग आन्दोलित होता है तो वहाँ की छात्र-युवा आबादी भी संघर्ष का हमसफ़र बन जाती है।

1968 के व्यापक छात्र आन्दोलन के बाद सरकारी नीतियों के खिलाफ़ फ्रांस में पिछले एक दशक से संघर्षों का सिलसिला चल रहा है। 1995 में यहाँ हुई व्यापक और लम्बी हड़ताल ने पूरी व्यवस्था को हिलाकर रख दिया था। इसमें भी छात्रों से लेकर मज़दूरों तक ने एकजुटता प्रदर्शित की। इसके बाद फीस वृद्धि के खिलाफ़ छात्र आन्दोलन में ट्रेड यूनियनों से लेकर अन्य तबकों का भरपूर सहयोग मिला। वर्तमान आन्दोलन में भी छात्रों-युवाओं से लेकर मज़दूर-कर्मचारी और पूरा शोषित-उत्पीड़ित तबका जुझारू एकता के साथ संघर्षरत रहा और उसने जीत हासिल की।

यह शानदार परम्परा भारत सहित दुनियाभर के मेहनतकश अवाम और उनके बहादुर युवा सपूतों के लिए प्रेरणादायी है।

जनतंत्र का अलमबरदार बने अमेरिका में मज़दूरों के ट्रेड यूनियन सम्बन्धी अधिकारों के कुछ नमूने

● अमेरिका के श्रम सम्बन्धी कानून (जिसे 'नेशनल लेवर रिलेशन्स एक्ट' के नाम से जाना जाता है) के दायरे से कृषि मज़दूरों सहित विभिन्न स्तर के मज़दूरों-कर्मचारियों को बाहर रखा गया है। नतीजतन, लगभग ढाई करोड़ गैर सरकारी और 70 लाख सरकारी मज़दूरों/कर्मचारियों को मज़दूरी और काम की शर्तों से सम्बन्धित कोई भी माँग उठाने तक का अधिकार नहीं है। इतना ही नहीं, सरकारी क्षेत्रों में ट्रेड यूनियन सदस्यों की संख्या मज़दूरों की कुल आबादी का यदि 40 प्रतिशत या उससे कम है तो वे किसी तरह का समझौता करने के अधिकार से भी वंचित हैं।

● इस कानून के तहत यूनियन प्रतिनिधियों के साथ मालिक को बन्द कमरे में बैठक करने का अधिकार मिला है जिसमें यदि कोई मज़दूर अनुपस्थित होता है तो उसे छँटनी तक की सज़ा मिल सकती है।

● मालिक द्वारा श्रम-सम्बन्धी कानूनों का पालन न करने की स्थिति में नेशनल लेबर रिलेशन्स एक्ट उनके लिए किसी किस्म की सज़ा का प्रावधान नहीं रखता। अधिक से अधिक मालिकों से इस सम्बन्ध में केवल प्रार्थना भर की जा सकती है जिसे मानना उसकी मर्जी पर निर्भर होता है।

● इस कानून की एक महत्वपूर्ण धारा 'अनफेयर लेबर प्रेक्टिस' सम्बन्धी प्रावधान तो न्याय और समता की पूरी भावना का ही माखौल उड़ाता है। मज़दूरों के यूनियन में संगठित होने, हड़ताल करने और समझौता वार्ता करने के अधिकार में यदि मालिक गैरकानूनी ढंग से हस्तक्षेप करता है तो श्रम अधिकारी के निर्देश (?) पर उसे इस आशय की घोषणा करते हुए नोटिस बोर्ड पर महज एक नोटिस चिपकाना होगा कि भविष्य में ऐसी घटना नहीं होगी। माँगों के सम्बन्ध में समझौता वार्ता के लिए भी मेनजमेण्ट को बाध्य नहीं किया जा सकता, महज अनुरोध किया जा सकता है।

तो यह है वह अमेरिकी जनतंत्र जिसके बारे में पूरी दुनिया में ढिंढोरा पीटा जाता है। लम्बे संघर्षों की बदौलत हासिल श्रम अधिकारों को वहाँ भी नये-नये श्रम कानून बनाकर छीन लिया गया है। भारत के श्रम कानूनों की बात की जाये तो दोनों देशों में कितनी अद्भुत समानता है। एक-एक करके अधिकारों को छिनते जाना यह सावित करता है कि दुनिया का शासक वर्ग एक है। अव दुनिया के मज़दूरों को भी एक होना पड़ेगा।

('श्रमिक इस्तेहार' से साभार)

बढ़ती बेरोजगारी

उदारीकरण के दौर का नारा है–रोजगार विहीन विकास। कहा जा रहा है कि अब स्थायी रोजगार का जमाना नहीं है। संयुक्त राष्ट्र की श्रम एजेंसी तक का मानना है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के विकास से नौकरी के अवसर नहीं बढ़ेंगे, बल्कि इससे निर्धनता में बढ़ोत्तरी होगी। उसके अनुसार तमाम देशों में बाजार की अर्थव्यवस्था के अनुरूप उत्पादकता तो बढ़ती रही है लेकिन रोजगार के अवसरों में कमी हुई है। यही नहीं, रिपोर्ट बताती है कि 1990 से 2000 के बीच ऊँची नौकरियों में वेतन में भारी बढ़ोत्तरी हुई है, जबकि छोटी नौकरियों की स्थिति विपरीत रही है।

उदाहरण के रूप में फ्रांस को देखें। यहाँ वर्तमान में बेरोजगारी की दर औसतन 10 फीसदी है। पच्चीस वर्ष से कम आयु में यह लगभग 22 फीसदी है। अफ्रीका और अरब मुल्कों से आये अप्रवासियों में यह दर लगभग 50 फीसदी है। यही नहीं, पार्टटाइम काम करते हुए पूर्णकालिक नौकरी ढूँढने वालों की तादाद भी, बेरोजगारों के साथ लगातार बढ़ती जा रही है। 1994 में ऐसे अर्द्ध बेरोजगारों की संख्या फ्रांस में 17 फीसदी और इटली में 12 फीसदी थी जो दोनों जगह बढ़कर, वर्तमान में 21 फीसदी हो गयी है। अमेरिका में बेरोजगारी की दर छह फीसदी और जापान में पाँच फीसदी है।

यह तो है विकसित देशों की स्थिति। तीसरी दुनिया के भारत जैसे पिछड़े देशों में हालात और बदतर हैं। भारत में 30 करोड़ बेरोजगार हैं। आई.एल.ओ. के अनुसार एशिया, अफ्रीका, मध्य और पूर्वी यूरोप में रोजगार के अवसर लगातार कम होते जा रहे हैं।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ। संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, म०ल०। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006. सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।